पृष्ठ संख्या

खण्ड 3 किरातार्जुनीयम् और नीतिशतकम्	
इकाई 11 किरातार्जुनीयम् महाकाव्य परिचय	185
इकाई 12 किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग)1—10 श्लोक	192
इकाई 13 किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग)11—25 श्लोक	204
इकाई 14 भर्तृहरी शतकत्रय परिचय	219
इकाई 15 भर्तृहरि नीतिशतकम् (श्लोक1—10)	233
इकाई 16 नीतिशतकम् (श्लोक 11—20)	246
इकाई 17 भर्तृहरि की समाज पर टिप्पणियाँ	259

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 किरातार्जुनीयम् महाकाव्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 किरातार्जुनीयम् : नामकरण और कथावस्तु

11.3 किरातार्जुनीयम् : काव्यवैशिष्ट्य

11.4 किरातार्जुनीयम् : प्रमुख सूक्तियाँ

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से आप :

- किरातार्जुनीयम् के मर्म को जान सकेंगे ।
- किरातार्जुनीयम् एक महाकाव्य है, उसकी विशेषताओं से परिचित होंगे ।
- किरातार्जुनीयम् को बृहत्त्रयी में स्थान मिला , इस रूप में इसकी विशेषताओं को समझ सकेंगे ।
- महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम् को समझ सकेंगे ।
- किरातार्जुनीयम् की भाषा शैली से भलीभाँति अवगत होंगे ।
- महाकवि भारवि की काव्यगत विशेषताओं से परिचित होंगे ।
- किरातार्जुनीयम् की विशेषताओं का अध्ययन कर, भाव ग्रहण करने तथा अपने शब्दों में प्रस्तुत करने में समर्थ होंगे।

11.1 प्रस्तावना

छात्रों अभी तक आपने लौकिक संस्कृत पद्य साहित्य नामक पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड **लौकिक संस्कृत पद्य साहित्य का इतिहास** के अन्तर्गत महाकवियों और उनके महाकाव्यों, खण्ड काव्यों व मुक्तक काव्यों के विषय में अध्ययन किया। दूसरे खण्ड **रघुवंशम् तथा कुमारसंभवम्** में आपने कालिदास के महाकाव्यों का परिचय प्राप्त किया । प्रस्तुत खण्ड तीन **किरातार्जुनीयम् और नीतिशतकम्** में आप सर्वप्रथम किरातार्जुनीयम् महाकाव्य का परिचय प्राप्त करेंगे। प्रस्तुत इकाई में आप भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनीयम् के विषय में अध्ययन करेंगे।

11.2 किरातार्जुनीयम्: नामकरण और कथावस्तु

किरातार्जुनीयम् संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाकाव्यों में एक अन्यतम महाकाव्य है। महाकवि कालिदास की कृतियों के अनन्तर संस्कृत–साहित्य में भारवि के किरातार्जुनीय का ही स्थान है। किरातार्जुनीयम्, भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। जिसकी गणना 'बृहत्त्रयी' काव्यों मे (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् तथा नैषधीयचरितम्) की जाती है। समस्त संस्कृत साहित्य में किरातार्जुनीयम् के समान सरल, कोमल, ज्ञेय पदावली तथा काव्य के सम्पूर्ण शास्त्रीय लक्षणों से समन्वित ओजस्वी दूसरा महाकाव्य नहीं है । 'बृहत्त्रयी' दूसरे महाकाव्य शिशुपालवध की भाँति इसमें न तो जटिल एवं क्लिष्ट शब्दों की भरमार है और न नैषध की भांति क्लिष्ट कल्पनाओं का अधिक प्रयोग है अपितु इस महाकाव्य में छोटे–छोटे समस्त पदों की सुललित कर्णप्रिय ध्वनि से युक्त परिस्फुट पदावली से संवलित, अर्थों की पुनरुक्ति से परे और आकांक्षित भाव को प्रकट करने में समर्थ श्लोक हैं। इसलिए कहा जाता है कि– **उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्। दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।** अर्थात् उपमा के प्रयोग में कालिदास, पदलालित्य में दण्डी तथा अर्थ गौरव में भारवि श्रेष्ठ हैं। भारवि का 'अर्थ–गौरव' संस्कृत साहित्य का एक विशिष्ट गुण है। जिसका अभिप्राय है– 'अल्प शब्दों में विपुल अर्थ का सन्निवेश'। भारवि ने बड़े से बड़े अर्थ को थोड़े से शब्दों में प्रकट कर दिया है। उन्होंने अपने काव्य में कुशलता से गम्भीर अर्थ वाले पदों का प्रयोग किया है। उनका प्रत्येक पद अर्थ गौरवता से समन्वित है और प्रत्येक पद साभिप्राय प्रयुक्त है। उनका एक एक पद दीर्घ वाक्य के अर्थ को प्रकट करने वाला है। यही कारण है कि कृष्ण कवि ने भारवि की रचना को सन्मार्गदीपिका के सदृश कहा है – **प्रदेशवृत्त्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना । सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्या कृतिः कैरिवनोपजीव्या।** भारवि की कविता का आदर्श ही अप्रतिम है। उनका व्यक्तिगत भी यही मानना है कि 'सुस्पष्ट वर्णालङ्कारों से विभूषित, शत्रुओं को भी वशीभूत कर लेने वाली, प्रसाद गुणोपेत, गम्भीर पदों वाली सरस्वती, पुण्यहीनों के मुख से कभी प्रकट ही नहीं होती'।

नामकरण– महाकवि भारवि ने अपने महाकाव्य का नाम 'किरातार्जुनीयम्' रखा है जो कि कथा के नायक अर्जुन से सम्बद्ध है। वस्तुतः इस महाकाव्य के समस्त कथानक का केन्द्र अर्जुन है। इसमें 'अर्जुन द्वारा किरात वेषधारी भगवान् शङ्कर से पाशुपतास्त्र की प्राप्ति का वर्णन है'। इस प्रकार किरात (शिव) तथा मध्यमपाण्डव वीर अर्जुन के सुचरित से सम्बद्ध यह ग्रन्थ किरातार्जुनीयम् कहलाता है। प्रायः महाकाव्यों के नाम उनके नायक के नाम पर जैसे रघुवंशम्, कथानक के नाम पर जैसे कुमारसम्भवम् अथवा अपने रचयिता के नाम पर जैसे भट्टिकाव्यम् होते हैं । किरातार्जुनीयम् की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी – 'किरातश्च अर्जुनश्च इति किरातार्जुनौ (द्वन्द्वसमास) तावधिकृत्य कृतं काव्यं किरातर्जुनीयम् (किरातार्जुन + छ प्रत्यय) इस छ प्रत्यय को 'ईय' आदेश हो जाने से किरातार्जुनीयम् शब्द बनता है। ग्रन्थवाची शब्द सदैव नपुंसकलिंग मे प्रयुक्त होते हैं। अतः इस ग्रन्थ का शीर्षक है – किरातर्जुनीयम् ।

कथावस्तु – जैसा कि नामकरण से ही स्पष्ट है, किरातार्जुनीयम् का कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है। इस महाकाव्य में 18 सर्ग तथा 1040 श्लोक हैं। वनवास–काल में अर्जुन द्वारा कौरवों पर विजय प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर अपनी उत्कट तपस्या द्वारा शिव को सन्तुष्ट करने के अनन्तर अपनी सहिष्णुता तथा साहसिकता का भी परिचय देना पडा है, और तब उन्हें अपने

अभिमत फलदायी पाशुपतास्त्र की प्राप्ति होती है। महाकाव्य का आरम्भ 'श्रियः' शब्द से होता है तथा ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी नाटक का रगमञ्च पर अभिनय आरम्भ हो रहा हो । प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द भी प्रयुक्त है। इस प्रकार मांगलिक शब्द का आदिमध्यावसान में प्रयोग करके महाकाव्य को मांगलिक बनाया गया है। कौरवों की कपट द्यूत–क्रीडा से पराजित पाण्डव जब द्वैत वन में निवास कर रहे थे तब उन्होंने यह जानना चाहा कि दुर्योधन का शासन किस प्रकार से चल रहा है, क्योंकि उनको आभास था कि अवश्य ही वह अपने क्रूर और कपटी स्वभाव वाले सहयोगियों के कारण प्रजा जन का विद्वेषी सिद्ध हुआ होगा और ऐसी स्थिति में उसके शासन के विरुद्ध प्रजा में बहुत गहरा असन्तोष भी पैदा हुआ होगा। प्रजा के आन्तरिक असन्तोष के कारण किसी भी राजा का शासन दीर्घ–कालव्यापी नहीं हो सकता । अतः किसी प्रकार से हस्तिनापुर के लिए एक गुप्तचर भेजकर वहाँ की स्थिति की जानकारी प्राप्त करनी ही चाहिये। इसी उद्देश्य से उन्होंने एक वनवासी किरात को चुना। इस महाकाव्य में संक्षेप में सर्ग–अनुसार कथा इस प्रकार है–**प्रथम सर्ग** में द्वैतवन में वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन प्रजा–पालन–नीति का वर्णन, तथा द्रौपदी का उत्तेजना पूर्वक भाषण, **द्वितीय सर्ग** में युधिष्ठिर और भीम का वार्तालाप, भीम द्वारा द्रोपदी का समर्थन करते हुए पराक्रम की महत्ता दिखाना, युधिष्ठिर का प्रतिवाद व्यास के आगमन का वर्णन है; **तृतीय सर्ग** में व्यास द्वारा अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का उपदेश, योग–विधि का निरूपण करके व्यास का अन्तर्धान होना, व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष के साथ प्रस्थान तक का वर्णन है आगे **चतुर्थ सर्ग** में इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का पहुँचना, शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन; **पञ्चम सर्ग** में हिमालय का वर्णन यक्ष का अर्जुन को इन्द्रिय–नियमन का उपदेश दिया गया है; **षष्ठ सर्ग** में अर्जुन की तपस्या, विघ्न डालने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं के आगमन की कथा है; **सातवें सर्ग** में गन्धर्वों तथा अप्सराओं के विलास का वर्णन, वन–विहार तथा पुष्पचयन का उल्लेख है; **आठवें सर्ग** में गन्धर्वों और अप्सराओं की उद्यान–क्रीड़ा तथा जल–क्रीड़ा का मोहक वर्णन है; **नौवें सर्ग** में सायंकाल, चन्द्रोदय, दूती–प्रेषण तथा प्रभात का वर्णन है; **दसवें सर्ग** में अप्सराओं की चेष्टाएँ, उनकी विफलता का उल्लेख है; **ग्यारवें** सर्ग में मुनि–रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्रार्जुन–संवाद, इन्द्र का अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश श्लोक बद्ध है; **बारहवें** सर्ग में अर्जुन की तपस्या, तपस्वियों का शिव को प्रेरित करना, अर्जुन को देवताओं का कार्यसाधक जानकर 'मूक' नामक दानव का शूकर रूप में अर्जुन वध के लिए आगमन तथा किरातवेशधारी शिव का आगमन वर्णित है; **तेरहवें** सर्ग में मूक दानव (जो शूकर के रूप में) पर शिव और अर्जुन दोनों का बाण–प्रहार, उसकी मृत्यु, शिव द्वारा भेजे गये वनेचर की अर्जुन के प्रति उलाहना पूर्ण कथन है, **चौदवें** सर्ग में वनेचर के लिए अर्जुन की उक्ति तथा किरातवेशधारी शिव के युद्ध का वर्णन है; युद्ध का चित्रकाव्य के रूप में वर्णन **पन्द्रहवें** सर्ग में किया गया है; **सोलहवें सर्ग** में शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध, मल्लयुद्ध का वर्णन **सत्रहवें सर्ग** में शिव और उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध वर्णित है तथा **अन्तिम सर्ग अठारह** में बाहुयुद्ध के बाद शिव का अपने मूल रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, इन्द्रादि द्वारा भी अर्जुन को विविध अस्त्रों का प्रदान, अर्जुन का युधिष्ठिर के पास आगमन का उल्लेख है। इस प्रकार "श्रिय कुरुणामधिपस्य" से आरम्भ किरातार्जुनीय की कथा "धृतगुरुजयलक्ष्मी धर्मसूनुनाम" से समाप्त होती है। महाभारत के लघु कथा सन्दर्भ को महाकाव्य के मनोहर ढाँचे में प्रस्तुत करना भारवि के अविरल कवित्व का परिचय देता है।

11.3 किरातार्जुनीयम्ः काव्यवैशिष्ट्य

भारवि चित्रकाव्य का प्रयोग करने वाले प्रथम संस्कृत कवि हैं। वे मुख्य रूप से कलावादी कवि हैं। वाक्य के अर्थपक्ष में गम्भीरता इनकी प्रमुख विशेषता है। भारवि वैदर्भी रीति के कवि हैं जिसमें समासों का अल्प ही प्रयोग होता है अतएव उसकी कविता में क्लिष्टत्व दोष नहीं है। शब्द–क्रीड़ा उनके काव्य में सीमित है, केवल 15वें सर्ग में चित्रकाव्य है उदाहरण के लिये पन्द्रहवें सर्ग का यह एकाक्षर श्लोक देखें– **न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु । नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुम्।** (१५/१४) अर्थात् (नाना–आननाः) हे अनेक मुखवाले शिवसैनिको, (ऊननुन्नः) निकृष्ट व्यक्ति के द्वारा आहत पुरुष (ना न) वस्तुतः पुरुष नहीं है। (नुन्नोनः) जिसने न्यूनता को नष्ट कर दिया है ऐसा (ना ननु अना) पुरुष वस्तुतः पुरुष से भिन्न अर्थात् देवता है। (न–नुन्नेनः) जिसका स्वामी अनाहत या अक्षत है वह (नुन्नः अनुन्नः) आहत होने पर भी आहत नहीं है। (नुन्ननुन्ननुत्) अत्यधिक आहत व्यक्ति को क्षति पहुँचाने वाला (न अनेनाः) अपराध–मुक्त नहीं हो सकता।

भावों के अनुसार ही इन्होंने काव्य में शब्द प्रयोग किया है, अर्थगौरव से पूर्ण सामान्य उक्तियों में प्रसादगुण है तो चित्रात्मक वर्णनों में ओजगुण का प्रयोग है। कवि ने दीर्घकाय समासों का प्रयोग नहीं किया है। चित्रकाव्यों में अवश्य ही कुछ अर्थावबोध में बाधा होती है परन्तु उसका कारण 'चित्रकाव्यता' मात्र है। वस्तुतः भारवि का काव्य, नारियल के समान कठोर भाषा के आवरण मात्र में है परन्तु यह कठोरता बाह्य ही है। नारियल के अन्तःस्थल की ही भाँति भारवि के काव्य का भी रस, सरल एवं सुमधुर है। आचार्य मल्लिनाथ ने ठीक ही कहा है– नारिकेल फलसमित वचो भारवेः सपदि तद् विभज्यते। स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भर सारमस्य रसिका यथेप्सितम्।। इसी प्रकार की भारवि के विषय में कुछ उक्तियाँ प्रचलित हैं, जैसे–भारवेरर्थगौरवम्, भारवेरिव भारवेः, प्रकृतिमधुरा भारविगिरः (अभिनन्द) इत्यादि। कवि ने भावों की आवश्यकता के अनुरूप ही अनेक अलंकारों और छन्दों का निवेश किया है। जैसे–द्रुताविलम्बित, औपच्छन्दसिक, प्रमिताक्षरा, प्रभा, रथोद्धता, जलधरमाला, प्रहर्षिणी, जलोद्वतगति, वसन्ततिलका, पुष्पिताग्रा, शालिनी, वंशपत्रपतित, मालिनी। मुख्य छन्द के रूप में इन्होंने रस के अनुसार छन्दों का प्रयोग किया है, यथा वीर रस के लिए वंशस्थ और सर्ग की समाप्ति पर मालिनी का प्रयोग किया है तथा सर्गान्त में छन्द के परिवर्तन की पद्धति भी रखी है। विविध छन्दों के प्रयोग में संस्कृत कवियों में सर्वप्रथम भारवि का ही नाम आता है। यह उनके पाण्डित्य और विचित्र मार्ग के प्रवर्तन का परिचायक है। पांचवें सर्ग में हिमालय का वर्णन करते हुए द्रुतविलंबित छंद के साथ यमक अलंकार का प्रयोग कवि माघ को भी आकृष्ट करता है जैसे यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हिमालय–वर्णन में दृष्टिगोचर होता है– **पृथुकदम्ब–कदम्बक–राजितं ग्रहित–माल–तमाल–वनाकुलम् ।। लघु–तुषार– तुषारजलश्च्युतं धृत–सदान– सदानन–दन्तिनम् ।।**

अर्थात् यह हिमालय बड़े–बड़े कदम्ब पुष्पों के समूह से शोभित हो रहा है, पंक्तियों में निबद्ध तमालवनों से भरा है, यहाँ बूँद–बूँद करके हिमालय स्रवित हो रहा है और सुन्दर मुखवाले (सदानन) मतवाले (सदानन) हाथियों को यह धारण करता है। यह श्लोक पाद–यमक का सुन्दर उदाहरण है– **विकचवारिरुहं दधतं सरः सकलहंसगणं शुचि मानसं। शिवं अगात्मजया च कृतेर्ष्यया सकलहं शुचिमानसं** 115/13 सकलहसगण शुचि मानसम् (सभी हस–गणों से युक्त पवित्र मानसरोवर) तथा सकलहं सगण शुचिमानसम् = अपनी पत्नी पार्वती से विवाद किये हुए, गणों के साथ,

पवित्र मन वाले भगवान् शिव को। हिमालय धारण करता है। इसी सर्ग में एक प्रसिद्ध उपमा का भी प्रयोग मिलता है, जिसमें यक्ष अर्जुन को कहते है कि यह स्थल कमल के पराग चक्रवात से इस प्रकार उडाए जाते हैं कि आकाश मंडलाकार बन जाता है और स्वर्ण से बने हुए छत्र का रूप ले लेता है। इस उपमान के कारण भारवि को 'आतपत्र–भारवि' भी कहा जाता है । भारवि के इन छन्दों की विशेषता यह है कि वे श्रुतिमधुर, सरस, प्रसाद गुण युक्त तथा पद–विन्यासों से युक्त हैं एवं सहृदय पाठक की चेतना को तत्क्षण अन्तर्मुखी बना देने में समर्थ हैं।

यह राजनीति प्रधान महाकाव्य है अतः इसका प्रधान रस वीर है। प्रधान वीर रस के साथ सहायक श्रृंगार एवं शांत रस का अद्भुत प्रयोग किया है। सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने किरातार्जुनीयम् के सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक से उसके सभी प्रमुख अंगों का संक्षिप्त परिचय दिया है–

नेता मध्यमपांडवो भगवतो नारायणयांशज
स्तस्योत्कृषकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः ।
शृंगारादिरसोऽयमत्र विजयी वीरप्रधानो रसः,
शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम्।।

11.4 किरातार्जुनीयम्: प्रमुख सूक्तियाँ

भारवि के काव्य में जीवन की गहरी अनुभूतियों का इतना सुष्ठु प्रयोग है कि उन्हें इस दिशा में अद्वितीय स्थान प्राप्त है। किरातार्जुनीय में यथाप्रसङ्ग उन्होंने जितने अर्थान्तरन्यासों का विधान किया है, उतने किसी दूसरे काव्य–ग्रन्थ में नहीं मिलेंगे। भारवि की मधुर सूक्तियाँ आज भी समाज में अनुकरणीय हैं और समय–समय पर सुधी जन उनका सदुपयोग भी करते रहते हैं। कतिपय सरस–सरल सूक्तियाँ इस प्रकार हैं–

1) **हितं मनोहरि च दुर्लभं वचः** (1/4) – ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हित कर होने के साथ मन के अनुकूल भी हो ।
2) **समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि सम महात्मभिः** (1/5) – नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है क्योंकि उससे ऐश्वर्य की सिद्धि होती है।
3) **अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता** (1/23)– बलवान् व्यक्तियों से विरोध करने पर अंत तो कष्टकर होगा ही।
4) **वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि** (8/39) प्रेम में गुण बसते हैं, किसी भौतिक पदार्थ में नहीं।
5) **आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः** (11/12)–इन्द्रियों के विषय तो अपनी प्राप्ति के ही समय अच्छे लगते हैं, अन्तिमावस्था में वे सन्ताप ही देते हैं।
6) **सुलभा रम्याता लोको दुर्लभं हि गुणार्जनम्**– संसार में सौन्दर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है, किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है।
7) **सहसा विधदीत न क्रियाम्** (2/30) – बिना विचारे अर्थात् अकस्मात् कोई काम नहीं करना चाहिए।
8) **अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः** (11/8) अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये, तथापि उसे देखकर मन में प्रबल हर्षोद्रेक होता ही है।

9) **दुरधिगमा हि गतिः प्रयोजनानाम्** (10/40) किसी उद्देश्य का अंतिम परिणाम क्या होगा, यह जानना कठिन है।

10) **आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः** (9/64–) सभी लोग अपने वर्ग का हित चाहते हैं।

11) **यथोलारेच्छा कि गुणेषु कामिनः** (8/4)–कामी जन सर्वदा गुणों की क्रमशः अधिकता की खोज करते रहते हैं, उपस्थित गुणों से संतुष्ट नहीं होते।

12) **मात्सर्यरागोपहतामनां हि स्खलन्ति साधुश्वपि मानसानि।** ईर्ष्याग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति भी द्वेष–युक्त ही रहते हैं।

किरातार्जुनीयम् में पात्रों का सफल चित्रण हुआ है। वनेचर की स्वामिभक्ति, सत्यवादिता, निश्छलता, विनम्रता, साहस, स्पष्टवादिता; द्रौपदी की मानसिक पीड़ा, व्याकुलता, प्रतीकार अर्जुन की वीरता, भ्रातृ–भक्ति, कर्त्तव्यनिष्ठा, भीम की वीरता, नीतिज्ञता, असहिष्णुता, युधिष्ठिर की नीतिज्ञता, शान्तिप्रियता, धर्मपरायणता इत्यादि का चित्रण बहुत ही सुन्दर हुआ है। प्रथम सर्ग में ही वनेचर तथा द्रौपदी की उक्तियों का अध्ययन उपर्युक्त तथ्यों को स्पष्ट कर देता है ।

इस प्रकार महाकाव्य के सभी लक्षण किरातार्जुनीयम् में देखे जा सकते हैं। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। इन्द्रकील पर अर्जुन की तपस्या किरात वेशधारी शिव जी के साथ उनका युद्ध तथा शिव जी से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन ही इसका कथानक है। महाकाव्य के नायक अर्जुन हैं जो एक धीरोदात्त क्षत्रिय हैं तथा नर के अवतार हैं। इसमें वीर रस मुख्य है। अन्य श्रृंगारादि रस गौण हैं। 18सर्ग में ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, पर्वत, नदी, जल–क्रीड़ा आदि का वर्णन विस्तार से है।

बोध/अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1) **अहो दुरन्ता ....**

2) **..............विधदीत न क्रियाम्**

3) **हितं ....च दुर्लभं वचः**

4.) **समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि सम ....**

बोध प्रश्न 2

निम्न वाक्यों की पूर्ति कीजिए–

1) भारवि के राजनीति प्रधान महाकाव्य का नाम लिखिए

....

2) वनेचर की विशेषताएँ लिखिए

....

3) भारवि की शैली की विशेषताएँ लिखिए

....

अभ्यास प्रश्न–

1. **किरातार्जुनीयम् की विशेषताओं कों अपने शब्दों में लिखिए ।**

11.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने किरातार्जुनीयम् की विशिष्टताओं का अध्ययन किया । आपने जाना कि नीति सम्बन्धित ज्ञान से परिपूर्ण यह महाकाव्य किस रूप में अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। अभी तक आपने किरातार्जुनीयम् का परिचय प्राप्त किया । अगली इकाई में आप किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग के 1–10 और आगे 11–25 श्लोकों का अध्ययन करेंगें, जिसमें यह इकाई महत्वपूर्ण सोपान सिद्ध होगी ।

11.6 शब्दावली

1. ओजस्वी– ओजयुक्त, प्रतापी, प्रभावशाली
2. समन्वित– समन्वय, मिला हुआ
3. आवरण– ढकना
4. दीर्घकाय– आकार, मात्रा में बडा
5. क्षति– नुकसान

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तके

1 किरातार्जुनीयम् सम्पादक डा. श्याम सुन्दरदास, डा. नाथूलाल सुमन, नितिन पब्लिशिंग हाउस, अलवर

2. किरातार्जुनीयम्, व्याख्याकार आचार्य श्रीनिवास शर्मा

3. The Kiratarjuniyam of Bharavi Cantos 1-3 M.R Kale

11.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) **बलवद्विरोधिता**
2) **सहसा**
3) **मनोहारि**
4) **महात्मभिः**

बोध प्रश्न 2

1) किरातार्जुनीयम्
2) वनेचर स्वामिभक्त, निडर, निश्छल, विनम्र, साहसी, स्पष्टवादी, सत्यवक्ता, ज्ञानी, व्यवहारकुशल, कुशल वक्ता, राजनीति का ज्ञाता आदि।
3) भारवि चित्रकाव्य का प्रयोग करने वाले प्रथम संस्कृत कवि हैं। वे मुख्य रूप से कलावादी कवि हैं। वाक्य के अर्थपक्ष में गम्भीरता इनकी प्रमुख विशेषता है। भारवि वैदर्भी रीति के कवि हैं जिसमें समासों का अल्प ही प्रयोग होता है अतएव उसकी कविता में क्लिष्टत्वदोष नहीं है।

इकाई 12 किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग 1–10 श्लोक

इकाई की रूपरखो

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 प्रथम सर्ग 1–10 श्लोक

12.4 सारांश

12.5 शब्दावली

12.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से आप :

- किरातार्जुनीयम् के प्रथम अध्याय के 1 से 10 श्लोकों का अर्थ और व्याख्या जान पाएंगे।
- किरातार्जुनीयम् एक महाकाव्य है, उसकी विशेषताओं से परिचित होंगे।
- किरातार्जुनीयम् को बृहत्त्रयी में स्थान मिला , इस रूप में इसकी विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम् को समझ सकेंगे।
- किरातार्जुनीयम् की भाषा शैली से भलीभाँति अवगत होंगे।
- महाकवि भारवि की काव्यगत विशेषताओं से परिचित होंगे।
- किरातार्जुनीयम् के 01 से 10 श्लोकों के अर्थ को अध्ययन कर, भाव ग्रहण करने तथा अपने शब्दों में प्रस्तुत करने में समर्थ होंगे
- गुप्तचर के दायित्व निर्वहन के रूप में भारवि सम्मत सेवक धर्म को पहचान सकेंगें।

12.1 प्रस्तावना

छात्रो वर्तमान इकाई में आप किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग के 1 से 10 श्लोकों का अध्ययन करेंगे। अभी तक आपने यह अध्ययन किया कि महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण को संस्कृत काव्य परंपरा में आदि काव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। वाल्मीकि रामायण की सरलता, सहजता, काव्यात्मकता, शैलीगत उदात्तता आदि को स्वीकार करते हुए महाकवि कालिदास ने रघुवंश जैसे महाकाव्य का सृजन किया तदुपरांत अश्वघोष ने बौद्ध धर्म को आधार बनाकर बुद्धचरित और सौन्दरनन्द महाकाव्य की रचना की वस्तुतः महाकाव्यों पर यदि विस्तृत रूप से दृष्टिपात किया जाए तो यह बात सिद्ध होती है कि मुख्यरूप से महाकाव्य तीन श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं –

1. विस्तृत महाकाव्य
2. स्वभाविक अलंकृत महाकाव्य
3. कृत्रिम अलंकृत महाकाव्य

वाल्मीकि रामायण आदि महाकाव्य है। इसी के आधार पर महाकाव्य का स्वरूप स्थिर हुआ। इसी प्रकार महाकवि कालिदास,अश्वघोष आदि के महाकाव्य अलंकृत सुनिश्चित ढाँचे में रचित परंतु स्वाभाविकता और सहजता से परिपूर्ण महाकाव्य हैं । इसी प्रकार अश्वघोष के महाकाव्य में भी इन्हीं प्रतिमानो जैसे सहजता ,सरलता, आदर्श ,मधुरता, संप्रेषणीयता, अलंकारमयता इत्यादि का निर्वहन हुआ है । महाकवि भारवि ने पूर्ववर्ती कलात्मकता और आदर्श का सम्यक् रूपेण निर्वाह नहीं किया अपितु भारवि की शैली में स्पष्टता, अभिव्यंजनात्मकता और सभी प्रकार के भावों को प्रकट करने की क्षमता निहित हैं । प्रस्तुत इकाई में महाकवि भारवि की एकमात्र रचना किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग के 1 से 10 श्लोकों का आप अध्ययन करेंगे।

12.2 प्रथम सर्ग 1–10 श्लोक

काव्य की निर्विघ्न समाप्ति हेतु ग्रन्थ का प्रारम्भ करते समय मगंल स्तुति एवं प्रार्थना करने की परम्परा रही है। यह मगंलाचरण आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक तीन प्रकार का होता हैं। कवि परम्परा का पालन करते हुए भारवि ने भी प्रथम पद्य में कथावस्तु का संकेत करते हुए मागंलिक शब्द ''श्री'' का भी प्रयोग किया हैं । किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग मे पद्य क्र. 01 से 44 तक वंशस्थ नामक छन्द है । वंशस्थमुदीरितं जरौ'' अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण एक तगण, एक जगण तथा एक रगण होता है उसे वंशस्थ छन्द कहते हैं।

श्रियःकुरूणामधिपस्य, पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्.क्त वेदितुम्
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ, युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ।। 1।।

अन्वय– कुरूणा अधिपस्य श्रियः, पालनी प्रजासु वृतिं वेदितुं यम् अयुङ.क्त, स वर्णिलिङ्गी वनेचरःविदितः सन् द्वैतवने युधिष्ठरं समाययौ ।।1।।

शब्दार्थ – कुरूणां अधिपस्य = कुरूराज दुर्योधन की, श्रियः = राज्य सम्पत्ति की,(तथा) प्रजासु = प्रजा विषयक, पालनीम् वृतिं = सुस्थिर बनाने वाले व्यवहार को, वेदितुं = जानने के लिए, यम् अयुङक्त = जिसे नियुक्त किया था, स वर्णिलिङ्गी = ब्रह्मचारी का वेश धारण करने वाला, वनेचरः = वह वनवासी, विदितः सन् = सम्पूर्ण समाचार ज्ञात कर, द्वैतवने = द्वैत नामक वन में, युधिष्ठरं = युधिष्ठर के पास, समाययौ = आया ।।1।।

अनुवाद– महाराज युधिष्ठर ने कुरूराज दुर्योधन की राजलक्ष्मी तथा प्रजा के प्रति उनके व्यवहार का पता लगाने के लिए जिस वनवासी की नियुक्ति की थी, वह वनवासी ब्रह्मचारी का वेश धारण कर, हस्तिनापुर जाकर राज्य के सम्पूर्ण समाचार ज्ञात कर पुनः द्वैतवन मे युधिष्ठर के पास आया ।।1।।

व्याख्या

प्रिय छात्रों अभी तक आपने यह जाना की वनेचर युधिष्ठिर के समक्ष आकर दुर्योधन की राज्य व्यवस्था, दुर्योधन का अपनी प्रजा के प्रति व्यवहार, प्रजा में दुर्योधन की लोकप्रियता इत्यादि के विषय में जानकारी देने के लिए

उपस्थित होता है। पूर्व में जिस गुप्तचर को नियुक्त किया था वह गुप्तचर ब्रह्मचारी वेश में जाकर, सब कुछ ज्ञात करके, पुनः द्वैतवन में युधिष्ठिर के समक्ष सारी जानकारी देने के लिए उपस्थित होता है।

– प्रस्तुत पद्य में वनेचर (किरात) के लिये वर्णिलिंगी इस पद का प्रयोग किया गया है। ''वर्णिलिंगी'' का अर्थ हैं – ब्रह्मचारी के चिन्ह को धारण करने वाला । शत्रु राजाओं की गुप्त जानकारी लेने के लिये गुप्तचर अन्य वेश मे भी भ्रमण करते थे। किरात भी युधिष्ठिर की आज्ञा से दुर्योधन की नीतिगत व्यवस्थाएँ जानने के लिये ब्रह्मचारी के वेश में गया था।

टिप्पणी –

वेदितुम् – विद्+ तुमुन प्रत्यय

वनेचर – वने+ चर्+ ट +सु

कुरूणाम् – कुरू + अण् +आम्

पालनीम् – पाल +ल्युट् +ङीप +

प्रजासु –प्र +जन +ड+ टाप् +सुप्

''द्वैतवने वनेचरः'' इस अंश में अनुप्रास अलंकार हैं।

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे, जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ।।2।।

अन्वयः– कृतप्रणामस्य, सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः, तस्य मनः न विव्यथे, हि हितैषिणाः मृषा प्रियं प्रवक्तुम् न इच्छन्ति ।।2।।

शब्दार्थ – कृतप्रणामस्य = प्रणाम किया है जिसने ,सपत्नेन = शत्रु द्वारा, जितां

महीं = जीती गई पृथ्वी (राज्य) के बारे में, महीभुजे = महाराज युधिष्ठिर से, निवेदयिष्यतः = निवेदन करने वाले, तस्य मनः = उस वनवासी का मन, न विव्यथे = विचलित नहीं हुआ, हि = क्योंकि, हितैषिणः = हितकारी जन, मृषा = असत्य, प्रियं = मधुर, प्रवक्तुं = बोलने की, न इच्छन्ति = इच्छा नहीं रखते ।।2।।

अनवुाद – शत्रुओं के द्वारा जिनका राज्य छीन लिया गया है, उन महाराज युधिष्ठिर से हस्तिनापरु के सम्पूर्ण समाचार को निवेदित करते हुए उस वनेचर का ह्रदय विचलित नहीं हुआ, क्योंकि स्वामी का हित चाहने वाले सेवक कभी झूठी मीठी बात नहीं बोलते ।।2।।

व्याख्या – इस श्लोक में वनेचर शिष्टाचारपूर्वक अपने स्वामी को प्रणाम करके निडर होकर, एक हितैषी के रूप में युधिष्ठिर के समक्ष सारी सच्चाई को प्रस्तुत करता है। इस श्लोक में हमने जाना कि वनेचर ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया उसने औपचारिकता का पालन किया। साथ ही अपने कर्तव्य कर्म का पालन करते हुए निर्भीकता के साथ, वह बिना घबराए हुए और न

ही दुःखी होते हुए शत्रु अर्थात् दुर्योधन की लोकप्रियता को युधिष्ठिर के सामने बताएगा क्योंकि वह राजा का हितैषी है । यह अच्छे सेवक की पहचान है कि वह सत्य का आश्रय ग्रहण करें न कि आडंबर का । वह क्या बताएगा यह उसकी भूमिका स्वरूप है ।

नीतिशास्त्र के अनुसार गुप्तचर को आल्यस्य रहित , सत्यवादिता , सत्यवक्ता ,स्वामीभक्त आदि गुणों से परिपूर्ण होना चाहिये जो कि उस किरात में हैं। हैं। वह हितैषी हैं, इसी कारण वह अपने स्वामी का अंधकार में नहीं रखना चाहता। गुप्तचरों के द्वारा झूठ और प्रिय वचन कहे जाने पर स्वामी को शत्रु की स्थिति का यर्थाथ ज्ञान नहीं हो पाता है । अतः गुप्तचरों का कर्तव्य हैं कि वह स्वामी से सत्य भाषण ही करें ।

टिप्पणी –

जिताम् –जि + क्त +टाप्

प्रवक्तुम – प्र + वच् + तुमुन्

महीभुजे –महीं भुनक्ति इति महीभुक् तस्मै

अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो, रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः ।

स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं, विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।।3।।

अन्वयः –द्विषा ं विघाताय विधातुम ् इच्छतः भूभृतः रहसि अनुज्ञाम् अधिगम्य सः सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी, विनिश्चितार्थाम्, इति वाचम्, आददे ।।3।।

शब्दार्थ – द्विषां = शत्रुओं के, विघाताय = विनाश के लिए, विधातुम् इच्छतः = उपाय करने की इच्छा रखने वाले, भूभृतः = महाराज युधिष्ठिर की, रहसि = एकान्त में, अनुज्ञां = आज्ञा, अधिगम्य = प्राप्तकर, सः = उस वनवासी ने, सौष्ठवौदार्य विशेषशालिनीं = उत्तम शब्द और अर्थ से युक्त (तथा) विनिश्चितार्थाम् = निश्चित अर्थ वाली, इति = ऐसी, वाचम् = वाणी को , आददे = ग्रहण किया (कहा) ।।3।।

अनुवाद शत्रुओं के विनाश की इच्छा रखने वाले महाराज युधिष्ठिर की एकान्त में आज्ञा प्राप्तकर उस भीलराज ने सुन्दर भाव एवं श्रेष्ठ अर्थ से युक्त वचनों को कहा ।।3।।

व्याख्या – शत्रु का विनाश चाहने वाले गुप्तचर का कर्तव्य है कि वह राजनीति के साम–दान–दण्ड–भेद का अभ्यास ग्रहण करे। भेद नीति द्वारा शत्रु के रहस्य को जानकर उससे बदला लिया जा सकता हैं। उसके द्वारा सूचना मिलने पर ही विनाश संबंधी प्रयास किया जा सका। किरात ने समस्त गुप्त सूचनाएँ निश्चित अर्थ को बताने वाली वाणी में दी। उसने अपने स्वामी की सहमति के अनुसार ही कहना प्रारंभ किया अतः उसे नियमों का ज्ञान भली–भांति है कि वह जो जानकारी राजा को देना चाहता है। उसके लिए एकांत होना चाहिए और युधिष्ठिर को उसकी बातों को सुनने के प्रति इच्छा भी होनी चाहिए। इन सब बातों को ध्यान रखने के उपरांत

ही वह मधुर और स्पष्ट रूप से अपनी बात को कहेगा । शब्दों का चयन करने का भी वह ज्ञाता है कहने का अभिप्राय है किसी शब्द के दो अर्थ अथवा संदेहस्पद अर्थ न हो ,वह शब्द एक विशेष प्रकार के अर्थ के लिए ही प्रयुक्त होता हो। ऐसे शब्दों का चयन करते हुए उसने अपनी बातों को कहना प्रारंभ किया यह सारी विशेषताएँ वनेचर की विद्वत्ता की ओर इशारा करती हैं।

टिप्पणी –

विधातुम्– वि + धा + तुमुन् प्रत्यय

अधिगम्य– अधि + गम + ल्यप् प्रत्यय

आददे– आङ् + दा + लिट्

कियासु युक्तैर्नृप ! चारचक्षुषो, न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा, हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।। 4।।

अन्वयः – हे नृप ! क्रियासु युक्तैः, अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः न वञ्चनीयाः । अतः असाधु साधु वा क्षन्तुम् अर्हसि । हितं मनोहारि च वचः दुर्लभं (भवति) ।। 4।।

शब्दार्थः – हे नृप ! = महाराज ! क्रियासु = महत्वपूर्ण कार्यों में, युक्तैः = नियुक्त, अनुजीविभिः = सेवको द्वारा, चारचक्षुषः = गुप्तचर ही जिनकी ऑखें हैं (ऐसे) प्रभवः = स्वामीगण, न वञ्चनीयाः = ठगे नहीं जाने चाहिए, अतः, असाधु = अनुचित, साधु = उचित, वा = अथवा, क्षन्तुम् अर्हसि = क्षमा करेंगे, क्योंकि हितं = हितकारी, मनोहारि = प्रियं, च = और, वचः=वचन दुर्लभम् = दुर्लभ है ।। 4।।

अनुवाद – हे महाराज ! राज्य के महत्वपूर्ण कार्यों में नियुक्त किये गये सेवकों को चाहिए कि वे अपने स्वामियों को धोखा न दें, क्योंकि स्वामीगण गुप्तचर रूपी नेत्रों से ही सम्पूर्ण राज्यकार्य को देखते हैं । अतएव आप मेरे द्वारा कहे गये प्रिय अथवा अप्रिय वचनों को क्षमा करेगें क्योंकि इस संसार में हितकारी एवं प्रिय वचन एक साथ प्रायः दुर्लभ है ।।4।।

व्याख्या – प्रस्तुत श्लोक में अत्यंत ही महत्वपूर्ण सूक्ति है **हितं मनोहारी च दुर्लभं वचः** प्रायः संसार में यह संभव नहीं है कि जो वचन हमारे लिए हितकारी हो वह हमें सुनने में भी अच्छे लगे। हमारे मन को आकर्षित करें क्योंकि यह संसार का एक सत्य है प्रायः हितकारी और मीठी वाणी एक साथ मिलना दुर्लभ होता है । गुप्तचर ने अपनी बात को कहने से पहले यह कहा कि राजा के द्वारा गुप्तचर को अत्यंत ही महत्वपूर्ण कार्य दिए जाते हैं, जिन्हें उन्हें गुप्त रूप से ही निष्पादित करना होता है यदि वह सारे कार्य राजा को ठगने वाले होंगे तो राजा के लिए कभी भी हितकारी नहीं होंगे और राजा विनाश को प्राप्त होगा इसलिए संसार में मीठी वाणी और सत्य वचन एक साथ मिलना प्रायः दुर्लभ होता है इसलिए मैं आपसे वही निवेदन करूँगा जैसा मैं जान कर आया हूँ ।

यदि मेरी कोई बात आपको उचित न लगे तो उसके लिए आप मुझे क्षमा करें ,मैं उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ ऐसा न्रम निवेदन गुप्त चर ने किया। राज्य के सम्पूर्ण कार्य को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये राजा गुप्तचरों की नियुक्ति करते हैं इसीलिये उनके राज्य की व्यस्था गुप्तचरों पर भी आधारित होती हैं। स्वराष्ट्र एवं परराष्ट्र के उचित अथवा अनुचित कार्यों की समीक्षा में गुप्तचर ही राजाओं के नेत्र होते हैं। इसी कारण राजा चार चक्षु कहे जाते हैं। राजा और राज्य के कल्याण के लिये गुप्तचरों को सत्य बोलना चाहिये। सत्य कटु भी हो सकता है इसी कारण वनेचर कहता है कि कटु उक्तियों के लिये क्षमा करना क्योंकि हितकर और प्रिय वचन एक साथ मिलना प्रायः दुर्लभ हैं।

अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

टिप्पणी —

दुर्लभं— दु + लभ् + अच् + सु

अनुजीविभि— अनु + जीव + णिनि

प्रभव : — प्रभु + जस् (प्रभव :) स्वामी जन, प्रथमा बहुवचन

वास्तविक सत्य का उद्घाटन किया हैं।

स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिप, हितान्न यः संश्रृणुते स किम्प्रभुः ।

सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ।। 5।।

अन्वयः — यः अधिपं साधु न शास्ति स किंसखा, यः हितात् न संश्रृणुते स किम्प्रभुः । हि सदा, अनुकूलेषु नृपेषु अमात्येषु च सर्वसम्पदः रतिं कुर्वते ।। 5।।

शब्दार्थः — यः = जो, अधिपं = स्वामी को, साधु = हितकारी, न शास्ति = उपदेश नहीं देता, सः किंसखा = वह कुत्सित मित्र (मन्त्री) है, यः हितात् = हितकारी मित्र (मन्त्री) की बात, न संश्रृणुते = नहीं सुनता, सः किम्प्रभुः (अस्ति) = वह कुत्सित स्वामी (राजा) है । हि = क्योंकि, नृपेषु = राजाओ के (तथा) अमात्येषु = मन्त्रियों के, सदा = हमेशा, अनुकूलेषु = अनुकूल, (एकमत) रहने पर ही, सर्वसम्पदः = सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ, रतिं = प्रेम, कुर्वते = करती हैं ।। 5।।

अनुवादः — जो मित्र (मंत्री सलाहकार आदि) अपने स्वामी को हित की सलाह नहीं देता वह उचित सलाह न देने के कारण कुत्सित मित्र है । इसी प्रकार जो स्वामी (राजा) अपने हितकारी मंत्री की बात पर ध्यान नहीं देता वह कुत्सित स्वामी है । इसका कारण यह है कि राज्य में राजाओं और मंत्रियों के सदैव एकमत रहने पर ही सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ फलती—फूलती हैं ।।5।।

व्याख्या — प्रस्तुत श्लोक का भाव यही है कि राजा और मंत्री के सदा अनुकूल एवं सहमत होने पर सभी प्रकार की संपत्तियाँ वृद्धि को प्राप्त होती है। मंत्री इत्यादि को अर्थात जो भी राजा के सेवक हैं उन्हें अपने राजा को हितकारी बातें ही सत्य रूप में बतानी चाहिए और राजा का भी यह कर्तव्य है कि वह अपने हित की बातों को ध्यानपूर्वक सुने और उसी के अनुसार अपनी नीतियों का निर्धारण भी करें। राजा और उसके अधीनस्थ सभी

सेवकों के एक साथ रहने पर सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ ,राज्य में खुशहाली संभव है, अन्यथा नहीं, यही इस श्लोक का सार है।

सम्पूर्ण संपत्ति की सिद्धि रुपी कार्य के द्वारा उर्पयुक्त कारण का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

टिप्पणी –

शास्ति– शास् + तिप् + प्र0 पु0 एक0

सर्वसम्पदः– सर्वाश्च ताः सम्पदः इति

अधिपं–अधि + पा + टच्

अमात्येषु–अमात्य तेषु सप्तमी बहुवचन

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः, क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः ।

तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया, निगूढतत्वं नयवर्त्म विद्विषाम् ।।6।।

अन्वयः – भपूतीनां निसर्गदुर्बोधं चरितं क्व ? अबोधविक्लवाः जन्तवः क्व ? अयं तव अनुभावः यत् मया विद्विषां निगूढतत्वं नयवर्त्म अवेदि ।। 6।।

शब्दार्थः – क्व = कहॉ (तो), भूपतीनां = राजाओं के, निसर्गदुर्बोधंम् = स्वाभाविक रूप से समझ में आने में कठिन । चरितम् = राजनीति (कूटनीति), अबोधविक्लवाः = अज्ञान के कारण मूढ़, जन्तवः = (मुझ जैसा) क्षुद्र जन, क्व = कहाँ, अयं तव अनुभावः = यह आपका प्रभाव है, यत् मया = जो मेरे द्वारा, विद्विषां = शत्रुओं की, निगूढतत्वं = अत्यन्त गढ़ू., नयवर्त्म = छः गुणों से युक्त राजनीति, अवेदि = जानी गई है ।। 6।।

अनुवादः – कहाँ तो राजाओं की अत्यन्त दुर्ज्ञेय राजनीति और कहाँ मुझ जैसे अज्ञानी क्षुद्रजन । यह तो आपकी शिक्षा का प्रभाव है, जो मैंने शत्रुओं की अत्यन्त गूढ , कूटनीति के विषय में भी जानकारी प्राप्त कर ली है ।। 6।।

व्याख्या – कवि ने नयवर्त्म कहकर राजनीति के षड्गुणों (सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय, द्वैधीभाव से युक्त) का संकेत किया है । इन्ही छः नीतियों का आश्रय लेना ही नयवर्त्म है । वनचेर को इन सभी नीतियों का ज्ञान युधिष्ठिर के साथ रहने से हो गया है । यही कारण है कि वह दुर्योधन की कूटनीतियों को समझ सका ।

प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से वनेचर राजा के समक्ष अपने को सामान्य बुद्धि वाला बताता है। गुप्तचर कहता है की राजाओं का व्यक्तित्व आसानी से समझ में नहीं आता है और मैं तो अत्यंत ही सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति हूँ । मुझे राजाओं का यह व्यक्तित्व और राजनीति इन सब बातों की गहन जानकारी नहीं है परंतु मैं अपनी बुद्धि से जो भी जान सकता था ,वह जान कर आया हूँ और आपके समक्ष कुछ कहना चाहता हूँ । गुप्तचर किसी भी प्रकार से अहंकारी नहीं है, यह उसके व्यक्तित्व का एक बहुत ही अच्छा सकारात्मक चिंतन है ,साथ ही वह किसी भी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं है । गुप्तचर में इन सभी विशेषताओं का होना विशेष रूप से अनिवार्य होता है।

टिप्पणी –

दुर्बोधम् – दुःखेन बुध्यते इति दुर्बोधम्

अबोधविक्लवाः–न बोधः (बुध घञ्)अबोधः तेन विक्लवाः

जहाँ दो विरूप पदार्थ का मेल हो वहाँ विषम अलंकार होता है । यहाँ पर अबोध विक्लव जन्तु तथा निगूढ तत्व नीति मार्ग से युक्त राजाओं का चरित इन दोनों विरूप पदार्थों की योजना हुई है । अतः विषम अलंकार है ।

विशङ्कमानो भवतः पराभवं, नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।

दुरोदरच्छद्मजितां समीहते, नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः।। 7।।

अन्वयः – नृपासनस्थः, अपि वनाधिवासिनः भवतः पराभवं विशङ्कमानः सुयोधनः दुरोदरच्छद्मजितां जगतीं नयेन जेतुं समीहते।। 7।।

शब्दार्थः – नृपासनस्थः अपि = (हस्तिनापुर के) सिहांसन पर प्रतिष्ठित होकर भी, वनाधिवासिन–= वन में निवास करने वाले भवतः= आप से, पराभवं = पराजय की, विशङ्कमानः = आशङ्का करता हुआ, सुयोधनः = दुर्योधन, दुरोदरच्छद्मजितां = जुए के कपट से जीती गई, जगतीं = पृथ्वी को (राज्य को), नयेन = नीति के द्वारा, जेतुं = जीतने की, समीहते = इच्छा रखता है (प्रयत्नशील हैं) ।। 7।।

अनुवाद – हस्तिानापुर के राज्यसिहांसन पर बैठा हुआ भी दुर्योधन, राज्य भ्रष्ट अतएव (प्रतिज्ञानुसार) वन में निवास करने वाले आपसे सदैव पराजय की आशङ्का करता हुआ, अब जुए के छल से जीती गई पृथ्वी को नीतिपूर्वक जीतना चाहता है अर्थात् साम, दान, दण्ड, भेद आदि उपायों के द्वारा अपने कुकृत्य से रुष्ट प्रजा को वश में करना चाहता है।।7।।

व्याख्या – अपनी बात को विस्तार करते हुए किरात राजा युधिष्ठिर से कहता हैं कि छल कपट से दुर्योधन ने जो राज्य आपसे छीना था वह आपके प्रति आशंकित रहता है इसीलिए वह छल कपट से जीते हुए राज्य को सुशासन के माध्यम से जीतने का प्रयास कर रहा है अर्थात दुर्योधन सिंहासन पर बैठा तो है परंतु जो राज्य उसने छल कपट द्वारा प्राप्त किया है, उससे वह भयभीत तो रहता है इसीलिए वह अपनी प्रजा को प्रसन्न करने के लिए हर संभव प्रयास कर रहा है । उसके शासन में प्रजा उससे अत्यंत ही प्रसन्न है ,राज्य में सर्वत्र सुव्यवस्था है ,शांति है, चँहु ओर समृद्धि का वातावरण है।

टिप्पणी –

सुयोधनः – सु + युध् + युज्

नयेन– नी + अच् + तेन

जेतुं–जि + तुमुन्

तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया, तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।।

समुन्नयन्भूतिमनार्यसङ्गमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ।।8।।

अन्वयः – तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति। भूतिं समुन्नयन् अनार्यसङ्गमात् महात्मभिः सम ं विरोधः अपि वरम् ।।8।।

शब्दार्थ : – तथापि = फिर भी, जिह्मः = धूर्त, सः = वह (दुर्योधन) भवज्जिगीषया = आप पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से (गुणों के द्वारा आप पर आक्रमण करने की इच्छा से) गुणसम्पदा = दया दाक्षिण्य, आदि गुणों की सम्पति से, शुभ्रं =

उज्जवल, यशः कीर्ति (को), तनोति = विस्तार कर रहा हैं। भूतिं समुन्नयन् = उत्कर्ष को ऊपर ले जाता हुआ, अनार्य सङ्गमात् = दुर्जनों के संसर्ग की अपेक्षा, महात्मभिः समम् = सज्जनों के साथ, विराधोऽपि वरम् = विरोध (वैर) भी श्रेष्ठ है ।।8।।

अनुवाद – शङ्कित ह्रदय होते हुए भी वह कुटिल दुर्योधन सज्जनता के द्वारा आपको जीतने की इच्छा से, दिखावटी दया, दाक्षिण्य आदि गुणों की गरिमा से उज्जवल कीर्ति का विस्तार कर रहा है। क्योंकि उन्नति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिए दुर्जनों के संसर्ग की अपेक्षा सज्जनों के साथ वैर भी श्रेष्ठ होता है ।। 8।।

व्याख्या – कुटिल स्वभाव वाला वह दुर्योधन अपने दिखावटी सद्गुणों द्वारा आप पर अनुरक्त प्रजा को अपनी आरे आकर्षित करना चाहता है । यह सब वह आपके भय से कर रहा है क्योंकि वह जानता है कि सज्जनों से विरोध करना दुष्टो से मैत्री करने की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है।

प्रस्तुत इस श्लोक में महाकवि भारवि कहते हैं कि कुटिल दुर्योधन आपको जीतने की इच्छा से आप से भी अधिक गुण एवं शालीनता के साथ अपने को शासक के रूप में प्रस्तुत करने की इच्छा से अपने यश का लगातार विस्तार कर रहा है क्योंकि संसार में दो तरह के लोग होते हैं –दुष्ट और महात्मा । दुष्टों के साथ रहकर ऐश्वर्य प्राप्त करने की अपेक्षा महात्माओं के साथ विरोध करना अच्छा होता है क्योंकि महात्मा श्रेष्ठ व्यक्ति के साथ विरोध करते हुए भी उनसे अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए उसे भी अच्छे कार्य करने होंगे अर्थात् अच्छों के साथ रहना तो अच्छा ही है और अच्छे से विरोध करना भी अच्छा ही रहता है । काव्यलिंग से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलंकार है क्योंकि महात्माओं के साथ विरोध के अच्छे होने के कारण भूतिसमुन्नयन् इस वाक्य से व्यक्त किया गया है ।

टिप्पणी –

समुन्नयन् –सम् + उद् + नी + शतृ प्रत्यय

विरोधः – वि +रूध् + घञ्

कृतारिषड्वगर्ज येन मानवीमगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।

विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा, वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ।।9।।

अन्वयः – कृतारिषडवर्गजयेन , अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुना, अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तन्दिवं विभज्य नयेन पौरुषं वितन्यते ।।9।।

शब्दार्थ : – कृतारिषड्वर्गजयेन = काम, क्रोध, लोभ आदि छः शत्रुओं पर जिसने विजय प्राप्त कर ली हैं। अगम्यरूपां = सांसारिक पुरूषों के लिये दुर्लभ, मानवीं पदवीं = महाराज मनु के द्वारा निर्दिष्ट प्रजापालन की रीति को प्रपित्सुना = प्राप्त करने का इच्छुक (तथा) अस्ततन्द्रिणा = आलस्यरहित, तेन = उस दुर्योधन के द्वारा, नक्तन्दिवं = रात्रि और दिन को, विभज्य = उचित रूप में बाँटकर, नयेन = नीतिपूर्वक, पौरुषम् = अपने पराक्रम् (उद्योग) का, वितन्यते = विस्तार किया जा रहा हैं ।।9।।

अनुवाद – जिसने काम, क्रोध, लोभ आदि छः मानसिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है तथा जो मनुष्य मात्र के लिये दुर्लभ, महाराज मनु के द्वारा निर्दिष्ट प्रजापालन की पद्धति को प्राप्त करना चाहता है, वह दुर्योधन समय सारणी के अनुसार रात्रि और दिन का उचित विभाग कर, नीतिपूवर्क अपने पराक्रम का विस्तार कर रहा हैं ।। 9।।

व्याख्या – प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने संसार में विख्यात मनुष्य के छः शत्रुओं के विषय पर प्रकाश डाला है। दुर्योधन उन छः शत्रुओं काम क्रोध, लोभ ,मोह, मद, और अहंकार इन शत्रु वर्ग से दूर रहकर दुर्योधन आलस्य का त्याग कर , समय विभाग के अनुसार नीति का आचरण करते हुए अपने पुरुषार्थ को प्रसारित कर रहा है । राजा दुर्योधन एक अच्छा राजा बनने के लिए छः प्रकार के शत्रुओं से दूर रहते हुए आलस्य का त्याग करते हुए नीति अनुसार समय का विभाग करते हुए एक कुशल राजा बनने के लिए लगातार प्रयासरत है।

टिप्पणी –

विभज्य– वि+ भज् + क्त्वा (ल्यप्)

वितन्यते– वि + तन् + लट्लकार ,कर्मवाच्य

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः, समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।

स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः, कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ।।10।।

अन्वयः – गतस्मयः स सन्ततं, अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीन्, इव, सुहृदः च बन्धुभिः समानमानान्, बन्धुतां कृताधिपत्यां, इव साधु दर्शयते ।।10।।

शब्दार्थ : – गतस्मयः = अहकंार रहित, सः दुर्योधन, सन्ततं = सदैव, अनुजीविनः सेवको ं की, प्रीतियुजः = अतिप्रिय, सखीन् इव = मित्रों की तरह, सुहृदः च = और मित्रों को ,बन्धुभिः समानमानान् = सहोदर भाइयों की तरह, तथा बन्धुताम् = भाइयों को ,कृताधिपत्याम् इव = अपने शासकों की तरह, साधु = भली–भाँति, दर्शयते = दिखाता हैं ।। 10।।

व्याख्या –प्रस्तुत श्लोक में राजा दुर्योधन के व्यवहार के पक्ष को इंगित किया गया है। दुर्योधन अपनी नीतियों और व्यवहार में बहुत परिवर्तन करके अपने सेवकों के प्रति प्रेम युक्त मित्रों के जैसा व्यवहार करता है और अपने मित्रों के प्रति भाई– बंधु जैसा व्यवहार करता है। अहंकार का त्याग कर दुर्योधन अपने बंधुओं के प्रति ऐसा व्यवहार करता है मानों वह ही स्वामी कें पद पर प्रतिष्ठित हों अर्थात् राजा के पद पर प्रतिष्ठित हों। प्रस्तुत श्लोक का सार यही है कि दुर्योधन ने अपने व्यवहार में परिवर्तन करके सभी के प्रति अनुकूलन, सहयोग ,प्रेम ,सम्मान, श्रद्धा और अपनत्व की भावना को अपनाया है ।

टिप्पणी –

बन्धुतां– बन्धु + तल् + टाप् इति

गतस्मयः– गतः स्मयः यस्य सः

दर्शयते –दृश् + णिच् + लट् लकार

अनुजीविनः– अनु + जीव् + णिनी प्रत्यय

बोध/अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न 1

क. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–**

1. किरातार्जुनीयम् ....की रचना है ।
2. किरातार्जुनीयम् में कुल सर्ग......... है ।
3. गुप्तचर राजा के.......... चक्षु होते हैं।
4 हितम मनोहारी च दुर्लभं .... ।

बोध प्रश्न 2

ख सही अथवा गलत लिखिए–

1. किरातार्जुनीयम् लघुत्रयी में आता है
2. महाकवि कालिदास की रचना का नाम किरातार्जुनीयम् है
3. वनेचर अद्वैत वन में लौटा
4. पांडवों की पत्नी का नाम द्रोपदी था
1. सत्यवचन यदि कटु हो तो हितैषी को उसे कहना नहीं चाहिए

3 अभ्यास प्रश्न

1. वनेचर की विशेषताओं को अपने शब्दों में लिखिए ।
2. महाकवि भारवि की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए ।

12.4 सारांश

प्रिय छात्रों आपने प्रस्तुत इकाई में यह जाना कि महाकवि भारवि की एकमात्र रचना किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग के प्रथम 10 श्लोकों का सार क्या है? इन श्लोकों के माध्यम से महाकवि भारवि क्या बताना चाहते है? इन श्लोकों के माध्यम से आपने तत्कालीन शासन व्यवस्था ,तत्कालीन समाज और संस्कृति का भी ज्ञान प्राप्त किया होगा । प्रस्तुत इकाई में आपने यह जाना कि गुप्तचर सारा वृत्तांत युधिष्ठिर को बताता हैं ,युधिष्ठिर ध्यानपूर्वक वनेचर की बातों को सुनते रहते हैं। जब वह दुर्योधन की प्रशंसा करता है, तब भी वह प्रतिकार नहीं करते, क्रोधित नहीं होते, यही अच्छे शासक की विशेषता है और दूसरी ओर वनेचर किसी भी प्रकार से अपने स्वामी का अहित नहीं चाहता इसीलिए वह जैसा भी, जो भी, जान कर आया है ,दुर्योधन के विषय में, सभी कुछ युधिष्ठिर के समक्ष प्रस्तुत करता है। वह निडर होकर अपनी बात को कहता है । वनेचर ने अपने स्वामी भक्त होने का , निडर और साहसी होने का भी परिचय इन श्लोकों के माध्यम से दिया है। अगली इकाई में आप 11 से 25 तक के श्लोकों का अध्ययन करेंगे । आगे की इकाई के अध्ययन में यह इकाई आपके लिए आधारभूमि का कार्य करेगी ।

12.5 शब्दावली

1. वनेचर – वन में विचरण करने वाला
2 विरोधी –शत्रु
3 समक्ष–सामनें
4 प्रतिकार– बदला लेना

12.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 किरातार्जुनीयम् सम्पादक डा. श्याम सुन्दरदास, डा. नाथूलाल सुमन, नितिन पब्लिशिंग हाउस, अलवर

2. किरातार्जुनीयम्, व्याख्याकार आचार्य श्रीनिवास शर्मा

3. The Kiratarjuniyam of Bharavi Cantos 1-3 M.R Kale

12.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उतर

बोध प्रश्न 01

1 भारवि

2. 22

3. चार

4. वचः

बोध प्रश्न 02

1. गलत

2. गलत

3. गलत

4 सही

5. गलत

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर छात्र स्वयं लिखे

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 13 किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग) 11 से 25 श्लोक

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 किरातार्जुनीयम् – श्लोक 11 से 25

13.3 सारांश

13.4 शब्दावली

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप –

- एक कुशल गुप्तचर के कर्तव्यों को समझ सकेंगे।
- एक कुशल शासक के व्यवहार से परिचित हो सकेंगे।
- वनेचर द्वारा कथित बातों की व्याख्या कर सकेंगे।
- गुप्तचर के दायित्व निर्वहन के रूप में भारवि सम्मत सेवक धर्म को पहचान सकेंगे।
- शब्दार्थ में परस्पर समन्वय स्थापित करते हुए भारवि की लेखन क्षमता से परिचित हो सकेंगे।
- सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर कुशलता से दे सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

प्राचीन संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की विस्तृत परम्परा है। परम्परा में हर युग का संपूर्ण चित्र लक्षित होता है। उस युग विशेष की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी स्थितियों का भी ज्ञान होता है। पिछली इकाई में महाकवि भारवि के किरातार्जुनीयम् के कुछ श्लोकों के माध्यम से संस्कृत साहित्य के वैभव को, महाकवि भारवि की ज्ञान–गरिमा को तथा तत्कालीन समाज के स्वरुप को भी जाना होगा। उसमें आपने देखा होगा कि कवि ने सरल, सुबोध तथा कोमल पदावली के द्वारा वैदर्भी रीति में काव्य के सम्पूर्ण इतिवृत्त का निर्वाह किया है। उसी शैली में आप इस इकाई में वनेचर द्वारा दुर्योधन के राज्य कौशल सम्बन्धी विभिन्न गुणों को जानेंगे।

13.2 किरातार्जुनीयम् – श्लोक 11 से 25

असक्तमाराधयतो यथायथं विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।

गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान् न बाधतेऽस्य त्रिगणःपरस्परम्॥11॥

अन्वय— यथायर्थं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणः गुणानुरागात् सख्यम् ईयिवान् इव परस्परम् न बाधते।

शब्दार्थ— यथायर्थं= यथायोग्य, विभज्य= विभाजन करके, समपक्षपातया= समान पक्षपात वाली, भक्त्या = भक्ति के द्वारा, असक्तम् = अनासक्त भाव से, अराधयतः = आराधना करते हुए (के), अस्य= इस (दुर्योधन) के, त्रिगणः= धर्म—अर्थ और काम, गुणानुरागात्= (अपने) गुणों में परस्पर अनुरक्ति के कारण, सख्यम् = मित्रता को, ईयिवान् इव= प्राप्त हुए से, परस्परं = परस्पर (एक दूसरे के लिए), न बाधते = बाधा नहीं पहुँचाते हैं।

व्याख्या— अच्छी प्रकार से विवेचन करके, समान रूप से, अनुरागभाव से, बिना (किसी) आसक्ति के सेवन करते हुए इस दुर्योधन के त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) परस्पर विरोध नहीं करते हैं। ऐसा लगता है मानो दुर्योधन के गुणों पर मुग्ध होकर वे परस्पर मित्रता को प्राप्त हो गए हों। वे त्रिवर्ग आपस में संघर्ष नहीं कर रहे हैं, प्रत्युत उसके अभ्युदय में सहकारी हैं। ऐसा लगता है मानो जब वह धर्म करता है उस समय अर्थ और काम उसके मार्ग में बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं। जब दुर्योधन अर्थोपार्जन करता है तो उसमें धर्म और काम विघ्न नहीं डालते और जब वह काम का सेवन करता है तब धर्म और अर्थ बाधक नहीं बनते। कहने का अभिप्राय है कि दुर्योधन आसक्ति रहित होकर तथा किसी के प्रति पक्षपात न करता हुआ प्रत्येक का यथोचित विभाग करके कार्य करता है अतएव धर्म, अर्थ, काम ये तीनों पुरुषार्थ इसके गुणों पर प्रेम रखने के कारण मित्र की तरह एक दूसरे की सेवा करते हैं अर्थात् दुर्योधन धर्म—अर्थ—काम में से प्रत्येक को बराबर का महत्त्व देता है अतएव ये त्रिगण भी इसको निरन्तर सहयोग करते हैं। यहाँ धर्म, अर्थ, काम के प्रति दुर्योधन की दृष्टि के बारे में बताया है।

टिप्पणी— समपक्षपातया— पक्षेपातः इति पक्षपातः। समः पक्षे पातो यस्यां तया, समपक्षपातया।

सख्यम्— सख्युर्भावः सख्यम् , सखि यत् प्रत्ययः।

विभज्य — वि+ भज् + ल्यप्

भक्त्या —भज् + क्तिन् , भक्तिः , तया ।

असक्तम् — सङ्ग् + क्त (कर्तरि) सक्तः, न सक्तः असक्तः (नञ् तत्पुरुष) तत् यथा स्यात्तथा असक्तम् (क्रियाविशेषण)

आराधयतः — आ + राध् + शतृ, आरधयन् तस्य।

त्रिगणः — त्रयाणां, धर्मार्थकामानां गणः (षष्ठी तत्पु०) इति त्रिगणः ।

गुणानुरागात् — गुणेषु अनुरागः (अनु + रञ्ज + घञ् भावे) इति गुणानुरागः (सुप्सुपा), तस्मात् । 'हेतौ पञ्चमी' इस नियम से हेतु (कारण) के अर्थ में पञ्चमी विभक्ति

बाधते— बाध् धातु, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

निरत्ययं साम न दानवर्जितं न भूरि दानं विरहस्य सत्क्रियाम्।

प्रवर्त्तते तस्य विशेषशालिनी गुणानुरोधेन विना न सत्क्रियाम्॥12 ॥

अन्वय— तस्य निरत्ययं साम दानवर्जितं न (प्रवर्त्तते) भूरि दानं सत्क्रियां विरहस्य न (प्रवर्त्तते), विशेषशालिनी सत्क्रियां गुणानुरोधेन विना न प्रवर्त्तते।

शब्दार्थ— तस्य= उस दुर्योधन के, निरत्ययं = बाधारहित, साम= सान्त्वना, दानवर्जितम् = दान के बिना, न= प्रवृत्त नहीं होती है, भूरिदानं = अधिकदान,

सत्क्रियां– सत्कार को, विरहस्य= छोड़कर (सत्कार के बिना), न= प्रवृत्त नहीं होता है, विशेषशालिनी = विशेष शोभा देने वाली, सत्क्रियां– सत्कार की पद्धति के, विना= बिना, न प्रवर्तते = प्रवृत्त नहीं होती है।

व्याख्या – दुर्योधन निष्कपट सान्त्ववचन बिना दान के, प्रभूत–प्रचुर दान बिना सत्कार के (और) वैशिष्ट्यपूर्ण सत्कार बिना गुणानुरोध के प्रवृत्त नहीं होता। सासाम, दाम, दण्ड और भेद यह चार प्रकार की नीति है। अर्थात् उसके अनुसार साम का प्रयोग दान के बिना नहीं किया जाता है और जो वह प्रचुर मात्रा में दान करता है वह सत्कारपूर्वक करता है और सत्कार गुणी का किया जात है । इस प्रकार कह सकते हैं कि वह योग्य व्यक्तियों का ही सत्कार करता है। किसी मनुष्य को वशीभूत करने के लिए नीतिविदों ने चार उपाय बताए है–साम–दान–दण्ड और भेद । उस क्रम में साम अथवा मधुरवचन प्रथमचरण है। अमरकोश के अनुसार– साम सान्त्वमुभे समे। आचार्य मल्लिनाथ लिखते हैं–यदि दुर्योधन केवल मीठी बातों से ही सबका सत्कार करता तो सफल न होता क्योंकि लोभी व्यक्ति को केवल शुष्क–प्रियवाक्यों से वशीभूत करना असम्भव होता है। नीति भी यही है कि **लुब्धमर्थेन गृहणीयात् साधुमञ्जलिकर्मणा । मूर्ख छन्दानुरोधेन तत्त्वार्थेन च पण्डितम् ।।** भाव यह है कि दुर्योधन बहुत ही सूझ बूझ से साम आदि उपायों का प्रयोग करता है। दान के बिना साम का प्रयोग नहीं करता अर्थात् सन्धि आदि करता है तो साथ साथ दान भी देता है। दान भी देता है तो सत्कार के साथ देता है, सत्कार भी करता है तो गुणों के कारण ही करता है अर्थात् गुणों के अनुरूप ही सत्कार करता है अर्थात् दुर्योधन गुणग्राही है, सत्कारशील है एवं दानपरायण है।

टिप्पणी– निरत्ययम् – निर्गतः अत्ययः यस्मात् तत् (निर् + अति + अय + अच)।
दानवर्जितम्– दा + ल्युट्. + वृज्. + णिच्. + क्त।

विरहस्य– वि + रह + णिच् + क्त्वा (ल्यप्)।

विशेषशालिनी– वि + शिष्. + घञ् + शाल् +. णिनि।

प्रवर्तते = प्र उपसर्ग वृतु वर्तने धातु, लट् लकार एक वचन।
अलङ्कार = एकावली अलङ्कार – स्थाप्यतेऽपोह्यतेवापि यथापूर्व पर परम–विशेषणतया यत्र सैकावली द्विधा अर्थात् जहाँ पूर्वपूर्व कथन के विशेषण रूप में उत्तरोत्तर कथन का विधान हो वहाँ एकावली होती है। जैसा कि इस श्लोक में कहा है – साम ,दान के बिना नहीं होता, दान, सत्कार के बिना नहीं होता, सत्कार, गुणानुरोध के बिना नहीं होता है । अतः यहाँ एकावली अलङ्कार है।

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।

गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्॥13॥

अन्वय– वशी सः वसूनि वाञ्छन् न, मन्युना न, निवृत्तकारणः स्वधर्मः इत्येव गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ सुते अपि वा धर्म विप्लवं निहन्ति।

शब्दार्थ– वशी= जितेन्द्रिय (इन्द्रियों को वश में रखने वाला), सः= वह दुर्योधन, वसूनि = धन को, वाञ्छन्= चाहता हुआ, न= दण्ड नहीं होता है, मन्युना= क्रोध के कारण से रहित हुआ, स्वधर्म= ''यह तो राज धर्म हैं'', इत्येव= ऐसा मानकर, गुरूपदिष्टेन= गुरु जो भी उपदेश देते हैं उस, दण्डेन= दण्ड के द्वारा, रिपौ= शत्रु में भी, पुत्रेऽपि= पुत्र में भी, धर्मविप्लवं = अधर्म को या धर्म के बाधक तत्त्व को, निहन्ति= नष्ट करता है।

व्याख्या– वह दुर्योधन जितेन्द्रिय होकर, न तो धन के लोभ से, न ही क्रोध के वशीभूत होकर किसी को दण्ड देता है, बल्कि यह क्रोध तथा लोभ से निवृत्त होकर गुरूपदिष्ट धर्मशास्त्रों के अनुकूल ही शत्रु और पुत्र में कोई भेद न समझकर, दण्ड के द्वारा धर्म के बाधकतत्व को नष्ट करना ही अपना कर्त्तव्य समझता है, क्योंकि जो दण्ड के योग्य न हो उन्हें दण्ड देना तथा दण्डनीयों को मुक्त अर्थात् स्वछन्द छोडना, राजा को अपयश का भागी बनाता है और परिणामस्वरूप नरक प्राप्त कराता है। वह दुर्योधन जितेन्द्रिय है । वह धन आदि इच्छा या अपने किसी स्वार्थ से कुछ कार्य नहीं करता है वरन् लोभ आदि को छोड़कर, अपना धर्म या कर्त्तव्य मानकर, गुरु एवं न्यायाधिकरण द्वारा निर्दिष्ट दण्ड से चाहे वह शत्रु हो या पुत्र हो किसी भी सम्बन्ध मे धर्म का अतिक्रमण नहीं करता है।

टिप्पणी– वाञ्छन् – वाञ्छ् + शतृ ।

विप्लवम् – वि+ प्लु + अप् ।

वशी – अधिकार या नियन्त्रण । जिसका अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण हो वही वशी है – वश अस्यास्तीति वशी ।

निवृत्तकारणः– अपगत कारण लोभादिहेतु यस्य स निवृत्तकारण (बहु० समास) । नि+ वृत् + क्त कृ + णिच् + ल्युट्।

उपदिष्टेन– उप + दिश् + क्त, तेन।

निहन्ति– नि़हन लट् लकार प्रथमपुरुष एक वचन।

विधाय रक्षान्परितः परतेरानशङ्किताकारमुपैति शङ्कितः।

क्रियाऽपवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः॥14॥

अन्वय– शङ्कितः परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारम् उपैति, क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य कृतज्ञतां वदन्ति।

शब्दार्थ– शङ्कितः= शङ्कालु होता हुआ (दुर्योधन), परितः= चारों ओर, परेतरान्= अपने, रक्षान् = मन्त्र को गोपनीय रखने में समर्थ रक्षकों को, विधाय= नियुक्त करके, अशङ्किताकारं = निर्भयता को, उपैति= धारण करता है, क्रियापवर्गेषु= कर्मों की समाप्ति पर अर्थात् फल प्राप्ति पर, अनुजीविसात्कृताः= सेवकों को दी गई, सम्पदः = सम्पत्तियाँ अस्य= इस दुर्योधन की, कृतज्ञतां= कृतज्ञता को, वदन्ति= कहती हैं अथवा प्रकट करती हैं।

व्याख्या– सुयोधन (दुर्योधन) स्वराष्ट्र, परराष्ट्र, सब जगह मन्त्र–गोपनसमर्थ आत्मीय कर्मचारियों को कार्यभार सौंप कर स्वयं उनका विश्वास न कर निशंकता का भाव प्रदर्शन मात्र करता है। कार्य समाप्ति के पश्चात् सेवकों को वेतन के रूप में प्रदान की गई सम्पत्तियाँ दुर्योधन की कृतज्ञता सूचित (प्रकट) करती है। मनुष्य की विचारधारा विशेष परिस्थिति में बदल भी सकती है। कभी–कभी अपने भी पराये हो जाते हैं इसीलिए शासक को किसी पर पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। किन्तु सब को सन्देह की दृष्टि से देखने पर विश्वसनीय भी अविश्वसनीय हो सकते हैं और धोखा दे सकते हैं। बुद्धिमानी यह है कि मन में सन्देह होते हुए भी उसे अपनी चेष्टा या व्यवहार द्वारा परिलक्षित न होने दें। दुर्योधन आत्मीयजनों को, विश्वसनीय लोगों को ही रक्षक नियुक्त करता है, किन्तु रक्षक नियुक्त करके भी वह दुर्योधन मन ही मन शंकित रहता है, अतः

चारों ओर से शत्रुओं से रक्षा करके स्वयं अशंकित की तरह व्यवहार करता है। अपने व्यवहार से यह आभास नहीं होने देता कि वह शङ्का करता है। यही नहीं बल्कि वह अपने–अपने कर्तव्यों को पूरा करने वाले लोगों या सेवकों को जो सम्पत्ति या पुरस्कार आदि देता है– वह पुरस्कार या सम्पत्ति यही बताते हैं कि दुर्योधन सेवकों के प्रति कृतज्ञ होने पर ही उन्हें पुरस्कृत करता है अर्थात् वह कृतघ्न नहीं है, यही उसकी विशेषता है।

टिप्पणी– परेतरान् परेभ्यः इतरे परेतरे तान् परेतरान पञ्चमी तत्पुरुष ।

रक्षान् – रक्षन्ति इति रक्षाः तान्।

विधाय– वि+ धा + ल्यप् ।

अशङ्किताकारम् – शङ्का सञ्जाता अस्य इति शङ्कितः, शङ्का. इतच् । न शङ्कितः अशंकितः। नञ् तत्पुरुष । अशंकितस्य आकारः अशंकिताकारः तम् । षष्ठी तत्पुरुष ।

आकारः – आ + कृ + घञ् ।

क्रियापवर्गेषु – क्रियाणाम् अपवर्गाः क्रियापवर्गाः, तेषु । षष्ठी तत्पुरुष ।

अनुजीविसात्कृताः – अनुजीविनां सात्कृताः इति अनुजीविसात्कृताः। अनुजीविन् + साति + कृ + टाप्।

कृतज्ञताम् – कृतं जानाति इति कृतज्ञः, तस्य भावः कृतज्ञता, ताम्। कृत + ज्ञा + क = कृतज्ञः, कृतज्ञ + तल् + टाप् ।

उपैति – उप + इ + लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

इस श्लोक में र और त की बार– बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

अनारतं तेन पदेषु लम्भिता विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।

फलन्त्युपायाः परिवृंहितायतीरूपेत्य संघर्षमिवार्थसम्पदः ॥15॥

अन्वय– तेन पदेषु सम्यक् विभज्य विनियोगसत्क्रियाः लम्भिताः उपायाः संघर्षम् उपेत्य इव परिवृंहितायतीः अर्थसम्पदः अनारतं फलन्ति।

शब्दार्थ– तेन= दुर्योधन के द्वारा, पदेषु= पदों पर, सम्यक् = भली–भाँति, विभज्य= विभाजन करके, विनियोगसत्क्रियाः= सत्कार पूर्वक, लम्भिताः= प्राप्त कराये गये, उपायाः= सामदानादि उपाय, संघर्ष= परस्पर स्पर्धा को, उपेत्य इव = प्राप्त हुए से, परिवृंहितायतीः = स्थिर अथवा उत्तरकाल में विस्तार को प्राप्त होने वाली, अर्थसम्पदः= धन सम्पत्तियों को, फलन्ति= जन्म देते हैं।

व्याख्या– वह दुर्योधन यह भली प्रकार जानता है कि कब किस परिस्थिति में कौन से उपाय का पालन किया जाए ? दुर्योधन उपयुक्त अवसर पर उचित उपाय का प्रयोग करता है। किन–किन लोगों के साथ सन्धि करनी चाहिए, किन–किन बलवानों को देना भी चाहिए, किस शत्रु से डरना चाहिए और किस–किस कम सामर्थ्य वाले से युद्ध करना चाहिए– इन सब बातों का विचार करके ही वह साम, दान, दण्ड उपायों का प्रयोग करता है। इस प्रकार इस विनियोग सत्क्रिया अर्थात् उचित प्रकार से साम–दान–दण्ड के उपयोग के कारण मानो प्रतिस्पर्धा सी करती और निरन्तर बढ़ती अर्थ सम्पत्ति ओर भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती है।

टिप्पणी– अनारतम् – न आरतम् (आ + रम् + क्त + नञ् समास)।

लम्भिताः – लभ् + णिच् + क्त (कर्मणि) ताः।

विभज्य – वि + भज् + क्त्वा (ल्यप्)।

उपेत्य – उप + इ + क्त्वा (ल्यप्)।

विनियोग – वि + नि + युज्।

परिबृहिता – परि + वृह + णिच् + क्त + टाप् ।

आयतिः – आ + यम् + क्तिन्।

यहाँ उपायों में परस्पर स्पर्धा की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्।

नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः।।16।।

अन्वय– अयुग्मच्छदगन्धिः नृपोपायनदन्तिनां मदः अनेकराजन्यरथाश्वसंकलं आस्थाननिकेतनाजिरम् भृशम् आर्द्रताम् नयति।

शब्दार्थ– अयुग्मच्छदगन्धिः = सप्तपर्ण पुष्प की गन्ध की भाँति, नृपोपायनदन्तिनां = राजाओं द्वारा उपहार में दिए गये हाथियों का, मदः= मद जल, अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं = अनेक राजाओं के रथ–घोड़ों से भरा हुआ, तदीयम्= दुर्योधन के, आस्थाननिकेतनाजिरं= सभाभवन के आङ्गन को, भृशं= अत्यन्त, आर्द्रतां = गीलेपन को, नयति = प्राप्त करा देता है अर्थात् गीला बना देता।

व्याख्या – सप्तपर्णी के फूल की तरह तीखी सुगन्ध वाला, अधीनस्थ राजाओं द्वारा उपहार में लाये गये हाथियों का मदजल राजाओं के रथों के घोड़ों से भरे हुये, दुर्योधन के सभाभवन के आँगन को बहुत अधिक गीला कर देता है । भाव यह है कि सैकड़ों अधीनस्थ राजाओं द्वारा उपहार के रूप में दुर्योधन को हजारों हाथी भेंट किये जाते हैं । अतएव उन मतवाले हाथियों के कपोलों से इतनी अधिक मात्रा में मदजल गिरता है कि सभाभवन का पूरा आँगन गीला हो जाता है । कहने का अभिप्राय यह है कि दुर्योधन का ऐश्वर्य इतना बढ़ गया है, उसकी अभिव्यक्ति सर्वत्र होती रहती है। जैसे– प्रतिदिन बहुत से राजा लोग अनेकों मतवाले हाथी इसे उपहार के रूप में देते हैं, जिनके गण्डस्थलों से बहता हुआ मदजल इसके सभा मण्डप के प्रांगण को आर्द्र बनाते ही रहते हैं। अर्थात् मदजल की आद्रता तथा गन्ध ही उसके ऐश्वर्य को व्यक्त करते हैं। वनेचर का भाव यह है कि दुर्योधन के बढ़ते प्रभाव के कारण विभिन्न देशों के राजा दुर्योधन से मैत्री–सम्बन्ध बनाने के लिए उत्सुक दिखाई पड़ते हैं और उसे प्रसन्न करने के लिए उपहार भी लाते हैं।

टिप्पणी– तदीयम्– तस्य इदम् (तत् + क + ईय्) ।

आस्थान– आ + स्था + ल्युट्

आर्द्रताम– आर्द्र + तल् + टाप + ताम् ।

उपायन– उप + इ + ल्युट्।

विशेष– एक वृक्ष है, जिसमें एक गुच्छे में सात पत्ते होते हैं, इसे 'सप्तपर्णज्' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम 'विषमच्छद' है। 'विषमच्छद' का ही पर्याय है अयुग्मच्छद। युग्म का अर्थ है जोड़ा। छद का अर्थ है पत्ता। जिस पेड़ के गुच्छे में पत्ते नहीं होते,

उसे अयुग्मच्छद कहते हैं। श्रेष्ठ हाथियों के गण्डस्थल से चूने वाले मदजल की गन्ध सप्तपर्ण के फूल की गन्ध के समान होती है।

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलैरकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृकाश्चिराय तस्मिन्कुरवश्चकासति ।।17।।

अन्वय— चिराय तस्मिन् क्षेमं वितन्यति अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्या इव कृषीवलैः सुखेन लभ्याः, सस्यसम्पदः दधतः चकासति।

शब्दार्थ— चिराय = चिरकाल तक, तस्मिन् = उस दुर्योधन के, क्षेमं = कुशलता को, वितन्वति= वितरित करते रहने पर, अदेवमातृकाः = वर्षा के जल पर आश्रित न रहने वाला, कुरवः= कुरु देश के क्षेत्र, अकृष्टपच्या इव= बिना कृषि कर्म के ही पकी हुई सी, कृषीवलैः= किसानों के द्वारा, सुखेन= सुखपूर्वक (बिना परिश्रम के), लभ्याः = प्राप्त होने वाली, सस्यसम्पदः= धान्य सम्पदा को, दधतः= धारण करते हुए, चकासति= सुशोभित हो रहा है।

व्याख्या— चिरकाल से दुर्योधन प्रजा का कल्याण करते रहने की स्थिति में प्रजा के अभ्युदय के निमित्त यत्नशील रहता है। उसके राज्य में कृत्रिम नदियों और नहरों का जाल बिछा हुआ है क्योंकि उसने आवश्यकतानुसार, जगह–जगह पर तालाब और नहरों का निर्मण कराया है, कृषकों को बिना अधिक परिश्रम किये ही अन्न का ढेर सुलभ है, जिससे उसके देश के निवासी हरे –भरे हैं। तात्पर्य यह कि अब प्रजा को वर्षा के जल पर आश्रित नहीं रहना पड़ता। सिंचाई की पर्याप्त सुविधा के कारण किसान कृषिकार्य में कठिनाई का अनुभव नहीं करते तथा किसानों द्वारा उगाई गई फसल से सम्पूर्ण कुरुदेश सस्यसमृद्ध हो गया है । भावार्थ यह है कि दुर्योधन के राज्य में नदी, नहरों एवं कुँओं आदि के द्वारा अर्थात् बिना वर्षा पर निर्भर हुए, अच्छी फसल प्राप्त होने से राज्य धन्य–धान्य में समृद्ध होने से प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

टिप्पणी— अदेवमातृकाः – देवः एव माता येषां ते देवमातृकाः। बहुव्रीहि । न देवमातृकाः अदेवमातृकाः। नञ् तत्पुरुष । लभ्याः– लभ् + यत् (कर्मणि) ताः, (सम्पदः का विशेषण)।

दधतः – धा + शतृ= दधत् ते, (कुरवः का विशेषण)।

कुरवः – कुरूणां निवासाः कुरवः। तस्य निवासः से अण् । कुरु + अण् । अण् का लोप ।

कृषिवलैः– कृषि + वलच् । वलच् के कारण इ का दीर्घ । ''क्षेत्राजीवः कर्षकश्च कृ षकश्च कृषीबलः''।

पच्याः– पच् + क्यप् (कर्मकर्तरि)।

सस्यसम्पदः – सस्यानां सम्पदः सस्यसम्पदः। षष्ठी तत्पुरुष ।

वितन्वति– वि + तन् + शत् = वितन्वन् तस्मिन् (सप्तमी एक वचन)।

उदारकीर्तेरुदयं दयावतः प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणरुपस्नुता वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी।।18।।

अन्वय– उदारकीर्तेः दयावतः अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयं दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे।

शब्दार्थ– उदारकीर्तेः= उदार कीर्ति वाले (के), दयावतः= दया करने वाले (के), अभिरक्षया = सुरक्षा के द्वारा, प्रशान्तबाधं = शान्त हुई बाधाओं से युक्त, उदयं = वृद्धि को, दिशतः= सम्पादन करते हुए (के), वसूपमानस्य= कुबेर तुल्य (के), अस्य= इस दुर्योधान के, गुणैः= दया आदि गुणों के द्वारा, उपस्नुता = प्रसन्न हुई, मेदिनी = पृथिवी, रत्नानि = रत्नों को, स्वयं = स्वयं, प्रदुग्धे = देती है।

व्याख्या– परम यशस्वी और दयालु, चारों तरफ से रक्षा की सुव्यवस्था करते हुये और कुबेरसदृश उस सुयोधन (दुर्योधन) को वसुन्धरा (पृथ्वी) उसके गुणों से प्रसन्न होकर बिना परिश्रम ही स्वयं ही सम्पत्ति प्रदान करती है । दुर्योधन के गुणों से द्रवित पृथ्वी उस गाय के समान है, जो अपना दूध स्वयं दे देती है। इसके लिए अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता। पृथ्वी स्वयं प्रभूत धनसम्पत्ति प्रदान करती है अर्थात् राज्य बाहरी आक्रमण आदि से मुक्त होकर निरन्तर समृद्धि की ओर बढ़ रहा है। भाव यह है कि वह यश अर्जित करने के साथ दयालुता का व्यवहार करता हुआ, प्रयत्न करता हुआ अपनी सुशासन व्यवस्था के कारण ही उन्नति प्राप्त कर रहा है ।

टिप्पणी– उदाराः कीर्तिः यस्य सः उदारकीर्तिः, तस्य । बहुव्रीहि । उद् + ऋ + घञ् –उदारः, कृत क्ति कीर्तिः।

दयावतः – दया अस्ति अस्य इति दयावान् तस्य । दया + मतुप् (वतुप्)

प्रशान्तबाधम् – प्रशान्ता बाधा यथा स्यात्तथा । अव्ययीभाव समास, क्रियाविशेषण

वसूपमानस्य – वसुः उपमानम् , उप + मा + ल्युट्।

अभिरक्षा – अभितः रक्षा अभिरक्षा, तया ।

दिशतः – दिश् + लट्+ शतृ + षष्ठी एकवचन, अस्य का विशेषण ।

प्रदुग्धे – प्र + दुह् + लट् कर्मकर्ता अर्थ में। प्रथमपुरुष एकवचन ।

यहाँ पृथ्वी का वर्णन है, किन्तु वर्णन के आधार पर अप्रस्तुत 'गाय' की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है।

महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
नसंहतास्तस्य नभिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्।।19।।

अन्वय– महौजसः मानधनाः धनार्चिताः संयति लब्धकीर्त्तयः न संहताः न भिन्नवृत्तयः धनुर्भृतः असुभिः तस्य प्रियाणि समीहितुं वाञ्छन्ति।

शब्दार्थ– महौजसः= महाबलशाली, मानधनाः=स्वाभिमानी, धनार्चिताः = धन से सम्मानित, संयति = युद्ध में, लब्धकीर्त्तयः = ख्याति प्राप्त किए हुए, न संहता = स्वार्थवश संगठित न होने वाले, न भिन्नवृत्तयः = भिन्न–भिन्न राय न रखने वाले, धनुर्भूतः = योद्धा, असुभिः = प्राणों के बदले भी, तस्य = उस दुर्योधन के, प्रियाणि = प्रिय कार्यों को, समीहितुं = करना, वाञ्छन्ति = चाहते हैं।

व्याख्या– वनेचर दुर्योधन की लोकप्रियता का वर्णन करते हुए कहता है कि दुर्योधन का हित चाहने वाले वीर अपने प्राणों की भी बाजी लगाने के लिए तैयार हैं। उसकी सेना के धनुर्धर जो महाबलिष्ठ हैं, जिन्हें अपनी कुलीनता का गर्व है, द्रव्यादि से सत्कृत हैं, धन के लोभ में पड़कर दुर्योधन को धोखा दें इसकी सम्भावना नहीं है। समराङ्गण में लब्धप्रतिष्ठ हैं, उन्हें युद्ध में पराजित करना आसान नहीं है। स्वार्थ के कारण योद्धाओं में न तो कोई संगठन है और न ही परस्पर कोई विरोध है अतः अवसर पा कर अपनी–अपनी खीर न पकाने वाले ऐसे उसके पास अस्त्र उठाए हुए

प्राणों की बाजी लगाने के लिए तत्पर योद्धा रहते हैं। दुर्योधन की सेना के योद्धा बलिष्ठ तथा कुलीन एवं यशस्वी हैं उससे मतभेद नहीं रखते, वरन् उसके लिए प्राणन्यौछावर करने को उत्सुक रहते हैं । कवि ने वनेचर के इस कथन में वीरों के लिए कुछ ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है जो प्रकारान्तर से दुर्योधन की सफलता की सम्भावना व्यक्त करते हैं।

टिप्पणी– महौजसः – महत् ओजः येषां ते । बहुव्रीहि।

मानधनाः – मानः एव धनं येषां ते । बहुव्रीहि।

धनार्चिताः – धनेन अर्चिताः। तृतीया तत्पुरुष । अर्चिताः – अर्च+ णिच् + क्त ।

धनुर्भृतः – धनुः विभ्रति इति धनुर्भृतः ते । उपपद समास । धनुष् + भृ + क्विप् ।

लब्धकीर्तयः – लब्धा कीर्तिः यै, ते। बहुव्रीहि।

नसंहताः – न संहताः नसंहताः।

संहताः – सम् + हन् + क्त।

नभिन्नवृत्तयः – भिन्नाः वृत्तयः तेषां ते भिन्नवृत्तयः। बहुव्रीहि। न भिन्नवृत्तयः नभिन्नवृत्तयः। सुप्सुपा । भिन्नाः – भिद् + क्त + टाप् वृत्तिः – वृत् + क्तिन् ।

समीहितुम् – सम्+ ईह् + तुमुन् ।

वाञ्छन्ति – वाञ्छ धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

इस श्लोक में विशेषणों का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है, अतः परिकर अलङ्कार है।

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः स वेद निश्शेषमशेषितक्रियः।

महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः।।20।।

अन्वय–अशेषितक्रियः सः सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रियाः निश्शेषम् वेद, धातुः इव तस्य ईहितम् महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

शब्दार्थ– अशेषितक्रियः = प्रारम्भ किए हुए कार्य को सम्पन्न करने वाला अर्थात् कार्य को अधूरा न छोड़ने वाला, सः= वह (दुर्योधन), सच्चरितैः= उज्ज्वल चरित्र वाले, चरैः= गुप्तचरों के द्वारा, महीभृतां = राजाओं की, क्रियाः = क्रियाओं को, निःशेष= सम्पूर्णता से, वेद= जानता है, धातुः= विधाता की, इव= तरह, तस्य= उस दुर्योधन का, ईहितं= इच्छित कार्य, महोदयः = उन्नतशील, हितानुबन्धिभिः= एवं हितकारक, फलैः = परिणामों के द्वारा, प्रतीयते= जाना जाता है।

व्याख्या– प्रजाओं के प्रति अपने सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों का निर्वाह कर लेने वाला दुर्योधन, जिस कार्य का आरम्भ करता है उसे समाप्त करके ही छोड़ता है, वह अपने शुद्धव्यवहार करने वाले विश्वस्त गुप्तचरों द्वारा इतर राजाओं की सम्पूर्ण चेष्टाओं की जानकारी रखता है। ईश्वरीय इच्छा के समान (विधाता की तरह), क्रियाजनित प्रचुर फलसिद्धि से उसके कार्य का अनुमान कर सकते हैं। कहा जा सकता है कि कार्य निष्पन्न होने पर ही उसका भेद खुलता है। भाव यह है कि वह अपने राष्ट्र की सभी प्रकार से रक्षा करके शत्रुओं के क्रियाकलापों को गुप्तचरों से जान लेता है, जबकि विधाता की तरह उसकी इच्छा या किए जाने वाले कार्यों को फल देने वाले कार्यों से

ही जाना जाता है अर्थात् उसकी गुप्तचर व्यवस्था बड़ी ही सबल प्रबल, एवं मजबूत हैं।

टिप्पणी– अशेषितक्रियः – न शेषिताः अशेषिताः। नञ् तत्पुरुष । शिष् + णिच् + क्त टाप् ।

सच्चरितैः – सत् चरितं येषां ते सच्चरिताः तैः। बहुव्रीहि ।

चरैः – चरन्ति इति चराः, तैः।

महीभृताम् – महीं विभ्रति इति महीभृतः तेषाम्। उपपद तत्पुरुष । मही+ भृ + क्विप्।

निःशेषम् – निर्गतः शेषः यस्मात् तत् यथा स्यात् तथा ।

प्रतीयते – प्रति + इ + लट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन ।

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम् ।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ।। 21।।

अन्वय– तेन क्वचित् सज्यं धनुः नोद्यतम् न वा आननं कोपविजिह्मम् कृतम् नराधिपैः अस्य शासनम् माल्यमिव शिरोभिः उह्यते।

शब्दार्थ – तेन= दुर्योधन के द्वारा, क्वचित्= कभी भी कहीं भी, सज्यं = प्रत्यञ्चा, से युक्त, धनुः= धनुष, न उद्यतं= नहीं उठाया गया, न वा= और नहीं ही, आननं= मुख, कोपविजिह्मम् = क्रोध से कुटिल, कृतं= किया गया, गुणानुरागेण= दुर्योधन के दयादाक्षिण्ययादि, अनुराग के कारण, नराधिपैः= राजाओं के द्वारा, अस्य= इसका, शासनं= आज्ञा या आदेश, माल्यमिव= माला की तरह, शिरोभिः= मस्तकों के द्वारा, उह्यते= धारणा किया जाता है।

व्याख्या– दुर्योधन ने न तो कहीं प्रत्यञ्चाबद्ध धनुष उठाया अथवा न ही मुखमण्डल को क्रोध के कारण विकृत किया। अपितु उसके दयादाक्षिण्यादि गुणों से आकृष्ट होकर नृपतिगण उसकी आज्ञा को माला के समान शिरोधार्य करते हैं। न तो वह किसी से युद्ध को उद्यत होता है और नहीं क्रोध करने की जरूरत पड़ती है, बल्कि उसे गुणों के कारण प्रेम करने वाले राजा लोग माला को मस्तक पर धारण करने के समान उसके आदेश का पालन करते हैं। इस श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार है। पूर्णोपमा अलंकार वहाँ होता है, जहाँ उपमा के चारों तत्त्व शब्द रूप में गृहीत होते हैं। यहाँ 'शासन' उपमेय, 'माला' उपमान 'इव' सादृश्यवाचक शब्द तथा 'अनुराग' साधारण धर्म है।

टिप्पणी – सज्यम् – ज्यया सह वर्तते इति सज्यम् । 'तेन सहेति तुल्योगे' सूत्र से बहुव्रीहि समास । वोपसर्जनस्य सूत्र से सह को स आदेश हो जाता है।
कोपविजिह्यम् – कोपेन विजिह्मम् कोपविजिह्मम् । तृतीय तत्पुरुष ।

गुणानुरागेण – गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः तेन। सप्तमी तत्पुरुष। हेतु अर्थ में तृतीया विभक्ति ।

नराधिपैः – नराणाम् अधिपाः नराधिपाः तैः। षष्ठी तत्पुरुष । अधिपः – अधि + पा + क ।

माल्यम् – माला एवं माल्यम् । माला + ष्यञ् ।

शिरोभिः – शिरस् शब्द का तृतीया बहुवचन का रूप है।

उद्यतम् = उद + यम + क्त कर्मणि।

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं निधाय दुःशासनमिद्धशासनः।
मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्।।22।।

अन्वय– इद्धशासनः सः नवयौवनोद्धतम् दुःशासनम् यौवराज्ये निधाव पुरोधसा अनु अखिन्नः (सन्) मखेषु हव्येन हिरण्यरेतसम् धिनोति।

शब्दार्थ – इद्धशासनः = स्थिर शासन वाला, सः = वह दुर्योधन, नवयौवनोद्धतं – नये यौवन से उद्धत (भयंकर), दुःशासनं = दुःशासन को, यौवराज्ये = युवराजपद पर, निधाय = बिठा करके, पुरोधसा = पुरोहित के द्वारा, अनुमतः = आज्ञा लिया हुआ, अखिन्नः = आलस्य रहित होता हुआ, मखेषु = यज्ञों में, हव्येन = हविषा के द्वारा, हिरण्यरेतसम् = हवन की अग्नि को, धिनोति = प्रसन्न करता है ।

व्याख्या– दुर्योधन की आज्ञा का उल्लङ्घन कभी नहीं होता। वह अभिनव युवावस्था से धृष्ट दुशासन को युवराज बनाकर, पुरोहित की आज्ञा से, (सर्वथा) आलस्य का परित्याग कर के यज्ञ में अग्निदेव को हविषा के द्वारा प्रसन्न करता है। वनेचर के अनुसार दुर्योधन की आज्ञा का कोई अतिक्रमण नहीं करता। वह अपने छोटे भाई को युवराज का दायित्व सौंप कर स्वयं धार्मिक कार्य में लगा रहता है। उसे राज्य की चिन्ता नहीं है, क्योंकि राज्य में सभी मन्त्री, सेवक आदि अपने – अपने कार्य में लगे हुए हैं। अतः स्वयं राज्य कार्यभार से मुक्त होकर पुरोहित के निर्देश के अनुसार यज्ञ–सम्पादन में तल्लीन रहता है। यहाँ द्वितीय चरण में व्यञ्जनों की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

टिप्पणी– इद्धशासनः – इद्धं शासनं यस्य सः। बहुव्रीहि । इद्धम् – इन्ध् + क्त । शासनम् – शास् ल्युट् ।
नवयौवनोद्धतम् – यूनो भावः यौवनम् । यौवन – युवन् + अण् । उद्धतम् – उद् + हन् + क्त ।
दुःशासनम् – दुःखेन शास्यते इति दुःशासनम् । दु + शास् + युच् तय् ।
यौवराज्ये – युवा चासौ राजा च युवराजः। कर्मधारय । युवराजस्य कर्म यौवराज्यं, तस्मिन् । युवराज. ष्यञ् यौवराज्यम्।
हिरण्यरेतसम् – हिरण्यं रेतो यस्य सः हिरण्यरेताः, तम् । बहुव्रीहि ।
धिनोति – धिन्व धातु लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन ।

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यतीरहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता॥23॥

अन्वय– सः प्रलीनभूपालं स्थिरायति भुवः मण्डलम् आवारिधि प्रशासत् त्वत् एष्यतीः भियः चिन्तयत्येव, अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता।

शब्दार्थ– सः = वह दुर्योधन, प्रलीनभूपाल = विरोधी राजाओं से रहित (अत एव) स्थिरायति = चिरस्थायी, भुवः मण्डलं= भूमण्डल पर, आवारिधिः = समुद्र तक, प्रशासत् = शासन करता हुआ, त्वत् = आपसे, एष्यतीः = आने वाले, भियः= भय हेतुओं की, चिन्तयत्येव = चिन्ता करता ही रहता है, अहो = आश्चर्य है, बलवद्विरोधिता = बलवान् के साथ विरोध करना, दुरन्ता = दुःखदायी अन्त का आह्वान करता है।

व्याख्या– शत्रु–विहीन, सुस्थिर भविष्य काले, समुद्र पर्यन्त भूमण्डल पर शासन करता हुआ भी सुयोधन, आपकी (युधिष्ठिर से) ओर से आने वाली विपत्तियों की चिन्ता करता ही रहता है। यह बात ठीक ही है कि बलवान् के साथ विरोध करना बहुत

दुःखदायी होता है। वस्तुतः पाण्डव जैसे प्रबल शत्रुओं के कारण दुर्योधन के साम्राज्य का भविष्य वास्तव में स्थिर नहीं है। फिर भी अपने विश्वस्त गुप्तचरों, मित्रों, सैनिकों एवं दयादाक्षिण्यादि गुणों के कारण सुयोधन ने साम्राज्य का भविष्य यथाकञ्चित् स्थिर बना ही लिया है। दुर्योधन के भयभीत होने का औचित्य प्रतिपादित करते हुए वनेचर पुनः कहता हैं कि बलवानों के साथ शत्रुता का परिणाम भयावह होता है। ऊपर से निश्चिन्त जैसा प्रदर्शन होने पर भी मन में एक भय सा रहता ही है । यहाँ चतुर्थचरण सूक्ति है। इस सूक्ति द्वारा पूर्व कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

टिप्पणी– प्रलीनभूपालम्– प्र + ली + क्त (कर्तरि) भू + पाल् + णिच् + अण् भुवं पालयन्ति इति भूपालाः। उपपद समास । प्रलीनाः भूपालाः यस्मिंस्तत् प्रलीनभपालम् तत बहुव्रीहि । स्थिरायति – स्थिरा आयतिः यस्य तत् । बहुव्रीहि ।

आवारिधि – आ वारिधिभ्य इति आवारिधि अव्ययीभाव समास

प्रशासत्– प्र + शास् + शतृ । प्रथमा एकवचन ।

एष्यतीः – इ + लृट् + शतृ । द्वितीय बहुवचन ।

बलवद्विरोधिता – बलवता विरोधिता बलवद्वरोधिता। सुप्सुपा । बलवत् – बल + मतुप् प्रत्यय । विरोधिता– वि + रुध् + णिनि तल् + टाप्

चिन्तयति– चिन्त् + णिच् + लट् ।

कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः।।24।।

अन्वय– कथाप्रसङ्गेन जनैः उदाहृतात् तव अभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः। दुःसहात् मंत्रपदात् उरगः इव नताननः सन् व्यथते।

शब्दार्थ– कथाप्रसङ्गेन = कथा प्रसङ्ग से (भी), जनैः = मनुष्यों द्वारा, उदाहृतात् = कहे हुए, तव = आपके, अभिधानात् = नाम मात्र से, अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः = स्मृति पथ पर आ गया है अर्जुन का पराक्रम जिसको, सः = वह, दुःसहात् = दुःसह, मन्त्रपदात् = मन्त्र के शब्द से, उरगः इव = सर्प की तरह, नताननः = नीचा मुख किए हुए, व्यथते = व्यथित होता रहता है।

व्याख्या– संस्कृत भाषा की विशेषता के कारण ही श्लेष के माध्यम से यह सम्पूर्ण पद्य दो अर्थ देने वाला है। एक तो दुर्योधन–विषयक और दसरा सर्प–विषयक। पहला अर्थ प्रासङ्गिक या उपमेयार्थ है और दूसरा अप्रासङ्गिक या उपमानार्थ। जिस तरह सर्प मन्त्रवेता से उच्चारित गरुड़ और वासुकी के नामयुक्त असह्य मन्त्रपद से गरुड़ के पराक्रम का स्मरण करके नतमस्तक हो जाता है। ठीक वही दशा सुयोधन (दुर्योधन) की हो जाती है। जब कभी जनसमूह की चर्चा में आपका नाम किसी के मुँह से निकल जाता है तो वह उसे सहन करने में असमर्थ हो जाता है और अर्जुन के बल का संस्मरण कर सिर झुका लेता है अर्थात् उसका हृदय प्रतिक्षण सन्तप्त हुआ करता है। भाव यह है कि किसी भी बातचीत के प्रसंग में उसे तुरन्त अर्जुन का पराक्रम स्मरण हो आता है, उसका शिर झुक जाता है और वह पीड़ा का अनुभव करने लगता है। और तब वह दुर्योधन उस सर्प के समान हो जाता है जो विषवैद्य द्वारा उच्चरित मन्त्र में आए हुए गरुड़ और वासुकि के नाम को सुनकर गरुड़ के पादक्षेप का स्मरण कर सोच में पड़कर कष्ट का ही अनुभव करता है। प्रस्तुत पद्य में श्लेष से अनुप्राणित पूर्णोपमा अलङ्कार है। उपमा के चार पक्ष – उपमेय, उपमान, वाचकशब्द और साधारणधर्म। जहाँ ये चारों प्राप्त हो वही पूर्णोपमा होती है। इस श्लोक मे 'स'

(दुर्योधन) 'उपमेय', 'उरग' उपमान, 'इव' वाचकशब्द तथा 'नताननः व्यथते' आदि साधारणधर्म हैं, फलतः पूर्णोपमा है।

टिप्पणी– उदाहृतात्– उद् + आ + हृ + क्त, तस्मात् ।

अनुस्मृतः – अनु + स्मृ + क्त।

विक्रमः– वि + क्रम + घञ्।

उरगः– उरसा गच्छतीति, (उरस् + गम् + ड)।'उरगः पन्नगो भोगी जिह्मगः पवनाशनः' इत्यमरः।

आखण्डलसूनुविक्रमः – 'आखण्डल' इन्द्र का नाम है । अमरकोष–'आखण्डलः सहस्राक्ष. ऋभुक्षा' इत्यमरः। 'सूनु' का अर्थ 'पुत्र और भाई' दोनों होता है, किन्तु यहाँ इसका अर्थ है 'पुत्र' । 'सूनु पुत्रेऽनुजे रवगै' इति विश्वकोश । सर्पपक्ष में अनुस्मृत कर लिया गया है आखण्डल (= इन्द्र) के सूनु (= अनुज वामन अथवा नारायण) के 'वि' अर्थात् पक्षी वाहनभूत पक्षिराज गरुड, का क्रम अर्थात् पादविक्षेप जिसके द्वारा ऐसा सर्प । आखण्डलस्य सूनु अनुजः (नारायणः), तस्य विः पक्षी गरुड, तस्य क्रम पादन्यास इति आखण्डलसूनुविक्रमः ।

तदाशु कर्तुंत्वयि जिह्ममुद्यते विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्तवतां प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः।।25।।

अन्वय– तत् त्वयि जिह्मं कर्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम् परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गिरः प्रवृत्ति साराः खलु।

शब्दार्थ– तत् = इसलिए, त्वयि = आपके प्रति, जिह्मं = कुटिलता, कर्तुं = करने के लिए, उद्यते = तत्पर, तत्र = उस दुर्योधन को, विधेयं = देने योग्य, उत्तरं = प्रत्युत्तर, आशु = शीघ्र, विधीयताम् = दिया जाए, परप्रणीतानि = शत्रु द्वारा कहे हुए, वचांसि = वचनों को, चिन्वतां = चुनते हुए, मादृशां = मेरे जैसे दूतों की, गिरः = वाणियां तो, प्रवृत्तिसाराः खलु = यथातथ्य सुनाने वाली ही होती है न कि प्रतिक्रिया को वाली।

व्याख्या– अतएव आपके समूल निर्मूलन कर लगे हुए दुर्योधन जो कपटाचरण करने के लिए समुद्यत, उस के प्रति करणीय प्रतिक्रिया का विधान (आप द्वारा भी) शीघ्र किया जाए। क्योंकि हम जैसे दूसरों के द्वारा कहे गए वचनों का संग्रह करने वाले मुझ जैसे लोगों के वचन निश्चित रूप से वृत्तान्त के सार मात्र होते हैं । अर्थात् हम सन्देशमात्र दे सकते हैं, कर्तव्योपदेश नहीं। 'प्रवृत्तिसार' अर्थात् 'वृत्तान्तरूप सार' कहने का एक अभिप्राय यह है कि वनेचर यह स्पष्ट करना चाहता है कि मेरी ओर से इस वृत्तान्त में कुछ जोड़ा नहीं गया है। बल्कि उसने जो सुना है, उसका ही सार है। यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन हुआ है अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

टिप्पणी– कर्तुम्– कृ + तुमुन् प्रत्ययः।

विधेयम् – वि + धा + यत् प्रत्ययः।

प्रवृत्ति– प्र + वृ + क्तिन् ।

प्रवृत्तिसाराः– प्रवृत्तिः सारः यासां ताः। बहुव्रीहि ।

चिन्वताम् – चि + शतृ (षष्ठी बहुवचन) तेषाम्।

उद्यते – उद् + यम् क्त । तस्मिन् ।

बोध /अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

क. कृषीवलः शब्द का क्या अर्थ है –

अ. कृषक

ब. गुप्तचर

ख. पुरुषार्थ के त्रिवर्ग में नहीं आता है –

(अ) धर्म (ब) दण्ड

(द) अर्थ (ड) काम

ग. दुर्योधन को किस से भय है ?

अ) वनेचर

ब) अर्जुन

घ. 'आखण्डल' किसका विशेषण है ?

अ) दुर्योधन

ब) अर्जुन

द) वनेचर

बोध प्रश्न 2

2. रिक्त स्थान भरिए –

क. दुरन्ता .... विरोधिता।

ख. त्रिवर्ग आपस में .... नहीं कर रहे हैं।

ग. सप्तपर्णी के .... तरह तीखी सुगन्ध वाला।

घ. धनुर्भृतः .... लब्धकीर्तयः।

अभ्यास प्रश्न–

1. वनेचर की उक्तियों की समीक्षा कीजिए।
2. दुर्योधन के राज्य से सम्बन्धित नीतियों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
3. किसी एक श्लोक की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
4. इकाई का सार अपने शब्दों में लिखें।

13.3 सारांश

किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग के इन श्लोकों के माध्यम से भारवि दुर्योधन की चरित्रगत विशेषताएँ तथा सेवकों के अपने स्वामी के प्रति सभी कर्तव्यों का बोध कराता है। सेवक का यह दायित्व है कि वह सत्य बात ही राजा के समक्ष रखे। इस इकाई में किरातार्जुनीयम् वर्णित युधिष्ठिर तथा वनेचर के बीच हुई वार्ता को बड़े सरल तरीके से बताया गया है। सार रूप में कहा जा सकता है कि दुर्योधन बड़े अच्छे ढंग से शासन कर रहा है। साम, दाम, दण्ड एवं भेद का समुचित रूप में प्रयोग करता है। उसने राज्य में सिंचाई की अच्छी व्यवस्था की है, जिससे कृषकगण वर्षा पर निर्भर नहीं है।

राजा लोग प्रेम से दुर्योधन के आदेश का पालन करते हैं, समय पर कर को चुकाते हैं और उपहार में हाथी एवं घोड़े देते हैं। इस प्रकार वह निरन्तर उन्नति कर रहा है फिर भी उसे अर्जुन का भय बना हुआ है।

13.4 शब्दावली

वशी = जितेन्द्रिय

हितैषिणः = हित चाहने वाले

अनुजीविभिः = सेवकों द्वारा

लब्धकीर्त्तयः = ख्याति प्राप्त किए हुए

निसर्गदुर्बोधम् = स्वाभाविक रूप से जानने में कठिन

प्रलीनभूपाल = विरोधी राजाओं से रहित

अयुग्मच्छदगन्धिः = सप्तपर्ण पुष्प की गन्ध की भाँती

कोपविजिह्मम् = क्रोध से कुटिल

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 किरातार्जुनीयम्ः सम्पादक डा. श्याम सुन्दरदास, डा. नाथूलाल सुमन, नितिन पब्लिशिंग हाउस, अलवर

1. किरातार्जुनीयम् ,व्याख्याकार आचार्य श्रीनिवास शर्मा

3. The Kiratarjuniyam of Bharavi Cantos 1-3M.R Kale

13.6 बोध /अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–

1.क = कृषक, ख = दंड, ग = अर्जुन, घ = अर्जुन

2.क = बलवत् ख = संघर्ष ग = फूल घ = संयति

अभ्यास प्रश्न –

3. इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 14 भर्तृहरि शतकत्रय परिचय

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 भर्तृहरि का परिचय

14.3 भर्तृहरि का सामाजिक अनुभव

14.4 शतकत्रय का परिचय

- 14.4.1 नीतिशतक
- 14.4.2 श्रृंगारशतक
- 14.4.3 वैराग्यशतक

14.5 नीतिशतक का प्रतिपाद्य

14.6 सारांश

14.7 शब्दावली

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.9 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- भर्तृहरि के जीवन-परिचय से परिचित हो जायेंगे।
- भर्तृहरि की काव्य-शैली से परिचित हो जायेंगे।
- भर्तृहरि द्वारा रचित ग्रन्थों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेंगे, विशेषकर नीतिशतक के प्रतिपाद्य विषय का विस्तार से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- भर्तृहरि का संस्कृत-साहित्य में महत्त्व तथा इनके योगदान से परिचित हो सकेंगे।
- आप संस्कृत भाषा की शब्दावली स्मरण कर पायेंगे।

14.1 प्रस्तावना

इकाई संख्या 12 संस्कृत पद्य-साहित्य के अन्तर्गत आती है। इसके अन्तर्गत भर्तृहरि का परिचय दिया गया है।

विश्व में संस्कृत काव्यशास्त्र की एक समृद्ध परम्परा है। यह मुख्यतः द्विविधरूप से विभाज्य है– गद्य और पद्य। पद्य परम्परा के अनेक विभाग-प्रविभाग हैं, जिसमें से एक गीतिकाव्य है, गीतिकाव्य का एक उपभेद मुक्तक काव्य है। भर्तृहरि को मुक्तक काव्य परम्परा के अग्रणी कवि के रूप में सर्वसम्मति से स्थापित किया गया है। इन्होंने शतकत्रय अर्थात् नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक नामक मुक्तक काव्य की रचना की है। अतः इस इकाई में भर्तृहरि का परिचय, उनकी काव्यशैली, शतकत्रय का परिचय तथा वैशिष्ट्य का अध्ययन

किया जायेगा, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण संस्कृत काव्यशास्त्र में भर्तृहरि के योगदान को समझने में सरलता होगी।

14.2 भर्तृहरि का परिचय

भारतीय संस्कृत साहित्य में भर्तृहरि एक महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में स्थापित हैं। अपने गीतिकाव्य के माध्यम से रससिद्ध कवीश्वरों के मध्य में इन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। विद्वानों ने इन्हें महाकवि और महाविद्वान् बताया है। इनके विषय में एक अज्ञातकर्तृक श्लोक इस प्रकार है–

महान्तः कवयः सन्तु महान्तः पण्डितास्तथा।
महाकविर्महाविद्वान् एको भर्तृहरिर्मतः।।

इनके द्वारा रचित काव्य-श्लोकों का स्पष्ट प्रभाव इनके परवर्ती अनेक कवियों पर दृष्टिगोचर होता है। कालिदास जैसे महान् कवि भी भर्तृहरि की रचनाओं से प्रभावित हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् का 'भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः' नामक श्लोक इसका स्पष्ट उदाहरण है, जो कि मूलतः भर्तृहरि के नीतिशतक का श्लोक है। विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, केशवमित्र का अलंकारशेखर, रुय्यक का अलंकारसर्वस्व, क्षेमेन्द्र का औचित्यविचारचर्चा, कविकण्ठाभरण और सुवृत्ततिलक, मम्मट का काव्यप्रकाश, गोविन्द का कार्यप्रदीप, वाग्भट्ट का काव्यानुशासन, भोजराज का सरस्वतीकण्ठाभरण आदि ग्रन्थों में भर्तृहरि के श्लोकों का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भर्तृहरि के जीवन के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। अन्य प्राचीन भारतीय विद्वानों के सदृश ही इन्होंने स्वयं के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं दी है। आधुनिक काल के संस्कृत साहित्य के इतिहास के विद्वानों ने इनके जीवन के विषय में जो कुछ भी निष्कर्ष निकाला है, उसका आधार अधिकांशतः किंवदन्तियां और दन्तकथाएं हैं। यही कारण है कि इनके माता-पिता, जन्मकाल और कर्तृत्व के विषय में एकमत स्थापित नहीं हो पाया है।

भर्तृहरि के जीवनवृत्त के विषय में प्रसिद्ध कुछ किंवदन्तियां इस प्रकार हैं–

1. एक जनकथा के अनुसार महाकवि भर्तृहरि के पिता का नाम वीरसेन था। वे गन्धर्व जाति के थे तथा इनकी चार सन्तानें थीं– भर्तृहरि, विक्रमादित्य, सुभटवीर्य तथा मेनावती।

2. एक दन्तकथा के अनुसार भर्तृहरि की पत्नी का नाम पद्माक्षी था तथा वह मगध के राजा सिंहसेन की पुत्री थीं।

3. अन्य कथा के अनुसार भर्तृहरि की पत्नी का नाम अनंगसेना था।

4. अन्य जनश्रुति के अनुसार भर्तृहरि की माता का नाम सुशीला देवी था, जो जम्बूद्वीप के राजा की एकमात्र सन्तान थीं, अन्य कोई सन्तान नहीं थी। अतः सुशीला देवी के पिता अर्थात् भर्तृहरि के नाना ने अपना सम्पूर्ण राज्य भर्तृहरि को सौंप दिया था। राजा भर्तृहरि ने उज्जयिनी को अपने राज्य की राजधानी बनाया। बाद में राजा भर्तृहरि ने विक्रमादित्य को राजसिंहासन का दायित्व देकर सुभटवीर्य को राज्य का सेनापति बनाया।

5. एक अन्य कथा के अनुसार भर्तृहरि उज्जयिनी के राजवंश से सम्बन्ध रखते हैं और यह राजा विक्रमादित्य, जो कि विक्रम संवत् के प्रवर्तक माने जाते हैं, इनके ज्येष्ठ

भ्राता थे। अतः राजा बनने के अधिकारी भर्तृहरि थे। पिंगला नाम की इनकी एक रानी थी, जिसकी स्वामी-भक्ति पर इन्हें अटूट विश्वास था, किन्तु पिंगला की दुश्चरिता की घटना के कारण भर्तृहरि की संसार से विरक्ति हो गयी थी और इन्होंने अपना राज्य अपने कनिष्ठ भ्राता को प्रदान कर वैराग्य ले लिया।

6. इन सब दन्तकथाओं से बिल्कुल भिन्न कथा शेषगिरिशास्त्री के द्वारा कथित है। शेषगिरिशास्त्री के अनुसार राजा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त नाम के एक ब्राह्मण के पुत्र थे। चन्द्रगुप्त ने चार विवाह किये थे इनकी पत्नियों के नाम क्रम से इस प्रकार हैं– ब्राह्मणी, भानुमती, भाग्यवती एवं सिन्धुमती। ये चारों रानियाँ क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्र थीं। इन चारों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया था, जिनका नाम क्रम से इस प्रकार था– वररुचि, विक्रमार्क, भट्टि तथा भर्तृहरि। इनमें से विक्रमार्क राजा बने एवं भट्टि इनके मन्त्री थे।

7. चीनी यात्री इत्सिंग ने भी एक किंवदन्ती का उल्लेख किया है कि भर्तृहरि ने सात बार गृहत्याग किया और पुनः गृहस्थ बने और अन्त में यह बौद्ध बने। किन्तु इनके बौद्ध होने को अधिकांश विद्वानों ने अस्वीकार कर दिया।

इस प्रकार इन किंवदन्तियों एवं जनश्रुतियों से इतना स्पष्ट है कि भर्तृहरि किसी राजवंश से अवश्य सम्बन्ध रखते थे तथा इनके भ्राता का नाम विक्रमादित्य तथा स्त्री का नाम पिंगला था। भर्तृहरि स्त्रियों के प्रति किसी भी प्रकार की श्रद्धा नहीं रखते थे, उनके अनुसार स्त्रियाँ अनेक प्रकार के दुर्गुणों से युक्त होती हैं, अतः इनके प्रति आसक्ति मनुष्य को नाश की ओर अग्रसारित करती हैं। यह भोग-विलास का प्रतीकात्मक स्वरूप है। अतः इनके प्रति वैराग्यभाव रखना ही कल्याणकारी है। अपने इसी मनोभाव को इन्होंने वैराग्यशतकम् नामक ग्रन्थ में पिरोया है।

बलदेव उपाध्याय के अनुसार यह शैव या वेदान्तोपासक थे, इसकी पुष्टि इनके दो ग्रन्थों नीतिशतक एवं वाक्यपदीयम् के मंगलाचरण से होती है। महाभाष्य टीका के पर्यनुशीलन से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है, कि यह वैदिक धर्मी थे ।

जिस प्रकार इनके माता-पिता, परिवार, कुल के विषय में संशय की स्थिति है, उसी प्रकार इनके नाम, व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विषय में भी संशय है। आधुनिक विद्वानों में यह संशय है कि संस्कृत ज्ञान परम्परा में भर्तृहरि नाम के एक ही विद्वान् थे अथवा दो विद्वान् हुए। क्या वाक्यपदीयम् नामक व्याकरणदर्शन का ग्रन्थ तथा शतकत्रय नामक गीतिकाव्य के ग्रन्थ के रचनाकार एक ही भर्तृहरि हैं, अथवा यह दोनों अलग-अलग व्यक्ति हैं? यदि अलग-अलग व्यक्ति हैं, तो इनका काल-निर्धारण भी अलग-अलग होना चाहिये। ज्ञात हो कि व्याकरणशास्त्र में महाभाष्यकार पतंजलि के पश्चात् सर्वाधिक प्रामाणिक आचार्य भर्तृहरि ही माने जाते हैं। इन्होंने बीजरूप में उपस्थित व्याकरण दर्शन को एक समग्र दर्शन बनाया। कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने दोनों भर्तृहरि को अभिन्न व्यक्ति माना है। इन्हें एक ही व्यक्ति मानने के कारणरूप में एक तर्क यह भी दिया जाता है कि नीतिशतक के मंगलाचरण में उद्धृत परब्रह्म तथा वाक्यपदीयम् के शब्दब्रह्म के स्वरूप में एकता दिखायी देती है। अतः सम्भवतः इन दोनों का रचनाकार एक ही व्यक्ति है। किन्तु भारतीय विद्वान् जैसे बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में महावैयाकरणी भर्तृहरि और महाकवि भर्तृहरि को एक ही व्यक्ति के रूप में नहीं स्वीकार किया है। युधिष्ठिर मीमांसक, जिन्होंने संस्कृत व्याकरणशास्त्र के इतिहास पर सर्वाधिक प्रमाणिक ग्रन्थ की रचना की है, उन्होंने भी कृतियों की विषय-वस्तु की विभिन्नता के आधार पर तीन भर्तृहरि के होने की सम्भावना प्रकट की है। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार यह कृतियाँ इस प्रकार हैं–

1. महाभाष्य-दीपिका
2. वाक्यपदीय-तीन खण्ड
3. वाक्यपदीय की स्वोपज्ञ वृत्ति-प्रथम और द्वितीय काण्ड
4. नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक
5. जैमिनीय मीमांसा वृत्ति
6. वेदान्तसूत्रवृत्ति
7. शब्दधातुसमीक्षा
8. भट्टिकाव्य
9. भागवृत्ति

इनमें से प्रथम तीन ग्रन्थ व्याकरणशास्त्र से सम्बन्धित हैं, अन्य गीतिकाव्य, मीमांसा-दर्शन, वेदान्तदर्शन इत्यादि से सम्बन्धित हैं। अतः भर्तृहरि एक ही व्यक्ति हैं, या एक से ज्यादा, इस विषय में विद्वानों के मध्य एकमत स्थापित नहीं हो पाया है। परिणामतः इनके काल के सम्बन्ध में भी विवाद है। उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' ने संस्कृत साहित्य का इतिहास में इनका समय ४०० ई. से ६०० ई. के बीच का माना है। किन्तु अधिकांश विद्वान् इनका समय छठीं शताब्दी के अन्त का मानते हैं और समस्या यह है कि कुछ विद्वान् इनका काल-निर्धारण एक ही भर्तृहरि मानकर करते हैं और कुछ इन्हें वैयाकरणशास्त्री से अलग मानकर करते हैं। अतः इनके जन्म-काल को लेकर इस प्रकार के मत हैं–

1. चीनी यात्री इत्सिंग के यात्राविवरण से यह स्पष्ट होता है कि भर्तृहरि नाम के वैयाकरण की मृत्यु 659 ईस्वी में हुई थी।
2. वाक्यपदीयम् के भर्तृहरि से एकता स्थापित करने पर इनका काल ७वीं शताब्दी से पूर्व का मानेंगे।
3. जनश्रुतियों में भर्तृहरि राजा विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता माने जाते हैं। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार विक्रमादित्य ने 644 ई. में कहरुर की लडाई में हूणों को पराजित किया था, अतः भर्तृहरि भी इसी काल के रहे होगें।
4. विद्वानों के अनुसार भारतीय कवि अमरुक की रचना अमरुकशतक भर्तृहरि के शृंगारशतक से विशेषरुप से प्रभावित है, अमरुकशतक में इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। अमरुक का काल लगभग 650 ई. से 750 ई. के मध्य माना जाता है, अवश्य ही भर्तृहरि का काल इनके पूर्व रहा होगा, इस आधार पर भर्तृहरि का जन्मकाल ६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जा सकता है।
5. इस मत से बिल्कुल भिन्न एक मत विद्वानों का यह भी है कि इनका काल ई.पू. प्रथम शताब्दी है, इस मत के समर्थक विद्वान् भर्तृहरि को कालिदास के समकालीन मानते हैं। कालिदास का समय ई.पू. प्रथम शताब्दी माना जाता है। भर्तृहरि द्वारा रचित श्लोक अनेक कवियों के ग्रन्थों में प्राप्त हैं, जिनमे से कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम् भी है। नीतिशतक का 'भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः' नामक श्लोक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में उद्धृत है। स्पष्ट है कि कालिदास कुछ अंश तक अवश्य ही भर्तृहरि के काव्य से प्रभावित रहे होंगे तथा कालिदास राजा विक्रमादित्य

के नवरत्नों में से एक माने जाते हैं, विक्रमादित्य भर्तृहरि के कनिष्ठ भ्राता माने जाते हैं, अतः इस आधार पर भर्तृहरि कालिदास के समकालीन अथवा इनके कुछ काल पूर्व ही रहे होंगे। अतः इस मत के अनुसार ई.पू. प्रथम शताब्दी के आस-पास का समय भर्तृहरि का होना चाहिये।

युधिष्ठिर मीमांसक ने भर्तृहरि के द्वारा रचित ग्रन्थों का उल्लेख किया है, इसकी सूची पूर्व के पृष्ठ में प्राप्त हो चुकी है। इन ग्रन्थों में से 'वाक्यपदीयम्' तथा 'सुभाषितत्रिशती' अपनी विषयवस्तु की महत्ता के कारण प्रसिद्ध है। वाक्यपदीयम् व्याकरण दर्शन का मुकुट शिरोमणि है एवं शतकत्रय संस्कृत काव्य जगत् के मुक्तक काव्यों का एक अनुपम उदाहरण है। भर्तृहरि ने शृंगारशतक के 99वें और 100वें श्लोक में मनुष्य के त्रिविध स्वभाव के विषय में स्पष्टतः संकेत दिया है। द्रष्टव्य है–

वैराग्ये सञ्चरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः।
शृङ्गारे रमते कश्चिद्भुवि भेदाः परस्परम्।।
यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्याऽस्पृहा मनोज्ञेऽपि।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामः सरोजिन्याः।।

(शृंगारशतक–99,100)

कवि के अनुसार मनुष्य वैराग्य, नीति या फिर शृंगार में से किसी एक पर आश्रित रहकर अपना जीवन-यापन करता है। अतः वह अपनी रुचि के अनुसार अपने लिये किसी एक मार्ग का चयन कर सकता है। सम्भवतः इसी दृष्टि को आधार बनाकर कवि ने तीनों शतकों की रचना की। भर्तृहरि के शतकों के नाम से इनकी विषय-वस्तु का भान हो जाता है। नीतिशतक में मनुष्य-जीवन की सार्थकता हेतु नीतियों का विवेचन, शृंगारशतक में शृंगार एवं वैराग्यशतक में वैराग्य का वर्णन है।

14.3 भर्तृहरि का सामाजिक अनुभव

भर्तृहरि के सामाजिक अनुभव के अन्तर्गत नीतिपरक सिद्धान्त, आध्यात्मिक सिद्धान्त, राजनैतिक सिद्धान्त आदि हैं, जो मनुष्य को सार्थक जीवन व्यतीत करने के लिये उच्चकोटीय दृष्टि प्रदान करते हैं। इन्होंने स्वयं भोगमय और त्यागमय जीवन का अनुभव प्राप्त किया है, अतः ये दोनों ही मार्गों के परिणाम से पूर्णरूपेण परिचित हैं। कवि दोनों मार्गों में से किसी एक मार्ग का चयन करने का परामर्श देते हैं। भर्तृहरि का यह प्रबल विश्वास है कि मनुष्य दैव (भाग्य) और कर्म दोनों के अधीन है। किन्तु भाग्य और कर्म में कर्म की ही प्रधानता है। कर्म ही हमारे कर्मफल को सुनिश्चित करते हैं। कवि कहते हैं–

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः।।

(नीतिशतक–97)

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की एकसमान रूप से स्वीकृति है। अतः कवि ने वैराग्य के साथ-साथ अर्थ (धन) की भी महत्ता बतायी है। सामाजिक व्यक्ति के लिये धनवान् होना भी आवश्यक होता है, क्योंकि धनी व्यक्ति ही समाज में कुलीन, गुणज्ञ, वक्ता और दर्शनयोग्य होता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

भर्तृहरि ने स्त्रियों के स्वाभाविक और औपाधिक गुणों के विषय में तो एक सम्पूर्ण शतक की रचना कर डाली है। यद्यपि स्त्रियों के विषय में उनका दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण दिखता है, सम्भवतः इसका कारण इनके व्यक्तिगत अनुभव हैं। इन्होंने स्वयं अपनी स्त्री के विश्वासघात का शृंगारशतक में वर्णन किया है। इनके अनुसार स्त्री अबला नहीं अपितु सबला है, क्योंकि समस्त पुरुष उसके शारीरिक सौन्दर्य, यौवन, कुटिलता इत्यादि के सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं। कवि के समय में वेश्याओं को भी सामाजिक मान्यता प्राप्त थी, यद्यपि उनसे भी दूर रहना ही पुरुषों के लिये श्रेयस्कर माना जाता रहा है। इनके शतकों से यह स्पष्ट होता है कि भर्तृहरिकालीन समाज में विद्वानों का बहुत महत्त्व है। राजा भी विद्वानों की अवहेलना नहीं कर सकता है। विद्वान् सदैव समाज में श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त होता है। विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में क्षमा, सदन में वाक्पटुता, स्वयश में रुचि और शास्त्र में व्यसन–यह सब श्रेष्ठ पुरुष रूप विद्वान् के लक्षण होते हैं। विद्वानों के विषय में लिखते हुए इन्होंने राजा में रहने वाले कई स्वाभाविक गुणों पर प्रकाश डाला है। इस प्रकार भर्तृहरि के शतकों के माध्यम से इनके सामाजिक अनुभव का ज्ञान प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिह्न लगाइये।

   (i) कविकण्ठाभरण के प्रणेता हैं – भर्तृहरि / क्षेमेन्द्र

   (ii) भर्तृहरि को शैव या वेदान्तोपासक मानते हैं – बलदेव उपाध्याय / डॉ. विश्वेश्वर

   (iii) नीतिशतक के मंगलाचरण में स्तुति है – कृष्ण / परब्रह्म

   (iv) 'महाभाष्यदीपिका' ग्रन्थ सम्बन्धित है – मीमांसादर्शन / व्याकरणशास्त्र

   (v) भर्तृहरि की माता का नाम है– सुशीला देवी / मामल्ल देवी

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये–

   (i) .... ने भर्तृहरि के द्वारा रचित ग्रन्थों की सूची का उल्लेख किया है। (युधिष्ठिर मीमांसक / कुमारिलभट्ट)

   (ii) भर्तृहरि ने अपनी स्त्री के विश्वासघात का वर्णन .... में किया है। (वैराग्यशतक / शृंगारशतक)

   (iii) भर्तृहरि के पिता का नाम ....है। (वीरसेन / भीमसेन)

   (iv) अमरुशतक के प्रणेता ....हैं। (भर्तृहरि / अमरुक)

अभ्यास प्रश्न 1

1. भर्तृहरि के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालिये।
2. भर्तृहरि के सामाजिक अनुभव पर टिप्पणी लिखिये।

14.4 शतकत्रय का परिचय

संस्कृत काव्य-क्षेत्र दो भागों मे विभक्त है– दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य। श्रव्य काव्य के तीन उपभेद हैं–पद्य, गद्य और चम्पू। पद्य काव्य के भी तीन उपभेद हैं– महाकाव्य, खण्डकाव्य और गीतिकाव्य। गीतिकाव्य के अन्तर्गत मुक्तक काव्य आते हैं और मुक्तक काव्य की मुख्य विशेषता यह होती है कि इसमें एक ही पद्य में या तो किसी एक रस की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है या किसी अत्यन्त उपयोगी विषय का वर्णन रहता है। अग्निपुराण

में मुक्तक काव्य का लक्षण इस प्रकार है– **मुक्तकं श्लोक एकैकंचमत्कारक्षमं सताम्** अर्थात् मुक्तक काव्य में प्रत्येक श्लोक स्वतन्त्र रूप से अपने सम्पूर्ण अर्थ का प्रकाशन करते हुए सहृदय में चमत्कार उत्पन्न करता है। इस दृष्टिकोण से भर्तृहरिकृत नीतिशतक अन्य मुक्तकों की तुलना में श्रेष्ठ है। ध्यातव्य है कि साहित्यसंगीतकलाविहीनः आदि प्रसिद्ध श्लोक नीतिशास्त्र में ही कहा गया है।

नीतिशतक में १११, श्रृंगारशतक में १०३ और वैराग्यशतक में १११ श्लोक हैं। शतकों की शैली प्रसादयुक्त है, जिसमें माधुर्य, पदलालित्य एवं भावप्रवणता है। भाषा भी सरल, प्रवाहपूर्ण, परिष्कृत एवं प्रांजल है। इनकी भाषा अत्यन्त स्वाभाविक है, जिसके कारण पद्य को पढकर स्वतः उसका भावार्थ स्पष्ट हो जाता है। कवि का भाव एवं प्रत्येक शतक में प्रयोग की हुई भाषा का अद्भुत सामंजस्य ही कवि की मुख्य विशेषता है। वैदर्भी रीति में इन्होंने अपने भावों को अभिव्यक्त किया है। इनके काव्य में दीर्घ समासों का प्रयोग नगण्य है। छन्दों और अलंकारो का प्रयोग भी सावधानी के साथ किया गया है। छन्दों में शिखरिणी, उपजाति, स्रग्धरा, वसन्ततिलका का प्रयोग बहुलता के साथ है। शार्दूलविक्रीडित इनका सबसे प्रिय छन्द प्रतीत होता है। अलंकारों में उपमा, रूपक, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति की प्रचुरता है। भाषागत और काव्यगत विशेषता के अतिरिक्त भर्तृहरि की और अन्य मुख्य विशेषता है–पद्य और वाक्यांश के रूप में सुभाषितों, लोकोक्तियों के द्वारा मानव-जीवन के आदर्श को प्रस्तुत करना। इन सुभाषितों एवं लोकोक्तियों के माध्यम से कवि ने जो भी समाज तक पहुंचाने का प्रयत्न किया है, उसमें वह पूर्णतया सफल हुए हैं और यही लोकोक्तियां कवि को वर्तमान में भी प्रासंगिक बनाये रखती हैं। इनकी लोकोक्तियां मनुष्य जीवन के सर्वांगीण विकास का संकेत देती हैं। व्यावहारिक तथा सांसारिक पक्ष से प्रारम्भ करके आध्यात्मिकता की ओर ले जाने में प्रेरणा प्रदान करती हैं। तीनों शतकों में लिखी गई लोकोक्तियां तथा सुभाषित में से कुछ प्रमुख का विवरण संक्षेप में इस प्रकार है–

नीतिशतक के सुभाषित वाक्य–विभूषणं मौनमपण्डितानाम् (श्लोक ७), न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् (श्लोक ९), विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः (श्लोक १०), मूर्खस्य नास्त्यौषधम् (श्लोक ११), सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् (श्लोक २३), सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः (श्लोक ५८), दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् (श्लोक ६०), न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः (श्लोक ८१) इत्यादि। इसके अतिरिक्त नीतिशतक की कुछ अन्य प्रमुख सूक्तियां इस प्रकार हैं– अवस्था वस्तूनि प्रथयति संकोचयति च। कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका न मणयो यैरर्घतः पातिताः। न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः। भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः। मूर्खस्य नास्त्यौषधम्। वाग्भूषणं भूषणम्। विद्याविहीनः पशुः। शीलं परं भूषणम् इत्यादि।

श्रृंगारशतक के सुभाषित वाक्य– किमिहं न हि रम्यं मृगदृशः (श्लोक ६), कं न वशं कुरुते भुवि रामा (श्लोक ९), पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः (श्लोक १७), विपदि हन्त सुधापि विषायते (श्लोक ३४), कन्दर्पदर्पदलने यौवनादन्यदस्ति (श्लोक ७०), हतमपि निहन्त्येव मदनः (श्लोक ६३), प्रियः को नाम योषिताम् (श्लोक ८०) इत्यादि।

वैराग्यशतक के सुभाषित वाक्य– अहह गहनो मोहमहिमा (श्लोक २०), सर्वं यस्य वाशादगात्स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः (श्लोक ३६), मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को द्ररिद्रः समीहामहे (श्लोक ६२), न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः (श्लोक ८६), मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धा न सेवांजलिः (श्लोक ६३), हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते (श्लोक ११३) इत्यादि।

इसके अतिरिक्त इन शतकों की विषय-वस्तु इस प्रकार है

14.4.1 नीतिशतक

नीतिशतक नाम से स्पष्ट है कि यह मनुष्य के जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप नीतियों का वर्णन करती है। इसके विषय में विस्तार से आगे कहा जायेगा।

14.4.2 शृंगारशतक

ग्रन्थ के नामकरण से स्पष्ट है कि शृंगारशतक में शृंगार का वर्णन है, जिसमें स्त्री-सौन्दर्य की मोहकता, इसके रूपजाल एवं विभिन्न-विलास का वर्णन है। ध्यातव्य है कि यहाँ मंगलाचरण में कामदेव को नमस्कार किया गया है, जिसके प्रहार से मनुष्य तो क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी अपनी रक्षा नहीं कर सके हैं। इस प्रकार मंगलाचरण में कामदेव की आराधना करना-स्वयं में एक अपवाद कहा जा सकता है, क्योंकि सामान्यरूप से संस्कृत साहित्य में मंगलाचरण में त्रिदेवों अथवा किसी देवी की अर्चना देखी जाती है। अतः स्पष्ट है इस वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से इस शतक की विषय-वस्तु का ज्ञान करा दिया जाता है। मंगलाचरण का श्लोकार्थ इस प्रकार है कि जिसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी स्त्रियों के गृहकार्य करने के लिये दास बना रखा है, जिसके प्रहार से कोई मनुष्य और देवता भी नहीं बच सके हैं, ऐसे कामदेव को नमस्कार है। मंगलाचरण के पश्चात् के श्लोकों में स्त्रियों के विलासपूर्ण भाव–व्यवहार की चर्चा करते हुए उसकी निन्दा की गयी है। कवि के अनुसार अर्धनेत्र से कटाक्ष करना, मीठी वाणी बोलना, लज्जापूर्वक हँसना, लीला करते हुए मन्द-मन्द चलना और फिर घूमकर खड़ी हो जाना, ये स्त्रियों के अलंकार भी हैं एवं शस्त्र भी हैं। अपने शारीरिक गुणों से यह सभी पुरुषों को अपने वश में कर लेती हैं। पुरुष को सुन्दर स्त्री के बिना जीवन ही व्यर्थ लगता है। पुरुष को मृगनयनी स्त्री के बिना समस्त संसार अन्धकारमय प्रतीत होता है–

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु।

विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत्।।१४।।

कवि कहते हैं कि पण्डितों के जीवनयापन के लिये दो ही मार्ग सुलभ हैं प्रथम या तो वह तत्त्वज्ञानरूपी अमृत रस में स्नान करके अपनी बुद्धि को निर्मल कर ले या फिर किसी सुन्दर शरीर वाली स्त्री जिसका स्तन पुष्ट हो और जघन भोगयोग्य हो, उसकी शरण में जाकर जीवन व्यतीत करे। भर्तृहरि के अनुसार साथ रहने पर थोड़ा-थोड़ा नेत्रों को बन्द करके जो एक युगल को प्राप्त होता है, वही वास्तव में कामदेव का पुरुषार्थ है–

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोऽनुसंविदं कुरुते।
मिथुनैर्मिथोऽवधारितमवितथमिदमेव कामनिर्बहणम्।।२७।।

ऋतुएं भी कामदेव की सहायक होती हैं, अतः कामदेव से बच पाना अत्यन्त दुष्कर है। किन्तु यही मोह लेने वाली स्त्री दुःख का कारण बन जाती है, जब यह नेत्रों से दूर हो जाती है। यह स्त्रियां दुश्चरिता भी होती हैं। कवि के अनुसार स्त्रियाँ वार्तालाप किसी अन्य पुरुष से करती हैं, विलासपूर्वक किसी अन्य को देखती हैं और उसी समय किसी दूसरे से मिलने की चाह हृदय में रखती हैं, अतः वास्तव में स्त्रियों का कोई भी प्रिय नहीं होता है। **'मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदि हालाहलमेव केवलम्'** अर्थात् इनके अधरों में अमृत और हृदय में विष रहता है। यह ऐसी सर्परूपा है, जिसकी कोई औषधि नहीं है। नारियों में

भी वेश्याएं और ज्यादा हानिकारक होती हैं। इस प्रकार कवि विविध प्रकार से स्त्री के दुश्चरित्र की व्याख्या करते हुए अपने श्रृंगारशतक का समापन करते हैं।

14.4.3 वैराग्यशतक

कवि को ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री-सौन्दर्य में लीन रहने पर पुरुष की मात्र हानि होती है, अतः स्त्री-मोह छोड़कर वैराग्य ग्रहण करना उत्तम है, क्योंकि यही शान्ति और आनन्द का मार्ग प्रदान करता है। इस दृष्टि से श्रृंगार के पश्चात् वैराग्यशतक की रचना का औचित्य तर्कसंगत प्रतीत होता है। अतः वैराग्यशतक के मंगलाचरण में सदाशिव के द्वारा कामदेव को भस्म करते हुए बताया गया है। भर्तृहरि के अनुसार सांसारिक सुख के पीछे भागते हुए मनुष्य को कभी भी अपने आकांक्षित वस्तु की प्राप्ति नहीं हो पाती है। वृद्ध हो जाने पर भी उसकी तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती है। वह कभी भी निःस्वार्थ भाव से कर्म नहीं करता है। किन्तु यदि वह स्वयं से विषयों का त्याग करे तो उसका त्याग महा-सुख का कारण बनता है, इसके विपरीत जब विषय मनुष्य को त्यागते हैं, तो मन को बहुत सन्ताप देते हैं। अतः सांसारिक विषयों का स्वयं त्याग करना ही श्रेयस्कर है–

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुखमनन्तं विदधाति।।१६।।

अतः तृष्णा का त्याग करके शान्ति, सन्तोषादि गुण का ग्रहण करना चाहिये। इससे स्वयं का मन प्रसन्न होता है और शनैः शनैः आत्मज्ञान अर्थात् विवेक-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। संसार के सारे पदार्थ किसी न किसी भय के स्रोत हैं, यथा भोग से रोग का भय, उत्तम कुल प्राप्त होने पर च्युति का भय, बलवान् होने पर शत्रुता का भय इत्यादि। किन्तु वैराग्य ही ऐसा पदार्थ है जिससे अभय प्राप्त होता है–

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।३४।।

कवि बड़े ही सुन्दर तरीके से संसार की विभिन्न उपमाओं के माध्यम से व्याख्या करते हैं–

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती वितर्कविगहा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः।।४३।।

अतः आशा नाम की नदी में मनोरथरूपी जल भरा है और यह तृष्णारूपी तरंगों से पूर्ण है, प्रीति ही इसमें मगर है, नाना प्रकार के तर्क इसमें पक्षी हैं इत्यादि। इसके विपरीत जिसे वैराग्य प्राप्त हो गया है या फिर जो वैराग्यप्राप्ति के लिये तत्पर है, उसके लिये हाथ बर्तन हैं, घूमते-फिरते जो कुछ मिले, वह उत्तम अन्न है, दिशायें ही वस्त्र हैं, पृथ्वी ही पलंग है। ऐसे वैराग्यप्राप्त जन को "जो तुम हो, वही हम हैं, और जो हम हैं, वही तुम हो। परस्पर कुछ भेद नहीं है" ऐसा बोध सदैव रहता है। कवि के अनुसार वैराग्य प्राप्त व्यक्ति को सदैव माया-मोह के बन्धन से परे रहकर शिव की भक्ति करते रहना चाहिये। इस प्रकार विभिन्न प्रकार से सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता का समर्थन करते हुए ईश्वर को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए उसकी भक्ति की सहायता से वैराग्य के द्वारा विवेक-ज्ञान तक पहुंचने का मार्ग इस शतक का अभिधेय है।

बोध प्रश्न 2

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिह्न लगाइये।

   (i) गीतिकाव्य के अन्तर्गत आते हैं – मुक्तक काव्य / महाकाव्य

   (ii) नीतिशतक में श्लोकों की संख्या है – 103 / 111

   (iii) भर्तृहरि का प्रिय छन्द है – उपमा / शार्दूलविक्रीडित

   (iv) 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगमः' सूक्ति वाक्य है – नीतिशतक / वैराग्यशतक

   (v) श्रृंगारशतक के मंगलाचरण में स्तुति की गयी है – शंकर / कामदेव

   (vi) 'अहह गहनो मोहमहिमा' सूक्ति वाक्य है – वैराग्यशतक / श्रृंगारशतक

2. श्रव्य काव्य के कितने उपभेद हैं ? उनके नाम लिखिये।

   ....

   ....

3. अग्निपुराण के अनुसार मुक्तक काव्य का लक्षण लिखिये।

   ....

   ....

अभ्यास प्रश्न 2

1. श्रृंगारशतक का प्रतिपाद्य विषय क्या है?
2. शतकत्रय के दस सुभाषित लिखिये।

14.5 नीतिशतक का प्रतिपाद्य

इस ग्रन्थ में कवि ने नीतिशास्त्र के सार्वभौमिक सिद्धान्तों की चर्चा की है। नीतिशतक व्यावहारिक उपदेशों का भण्डार है। विद्वानों ने नीतिशतक की विषयवस्तु को ११ पद्धतियों में बांटा है, जो इस प्रकार हैं–

(१)ब्रह्म की स्तुति, (२) मूर्ख निन्दा, (३) विद्वत्पद्धति, (४) मानशौर्यपद्धति, (५) अर्थपद्धति, (६) दुर्जनपद्धति, (७) सुजनपद्धति, (८) परोपकार पद्धति, (६) धैर्य-पद्धति, (१०) दैव-प्रशंसा और (११) कर्म-पद्धति।

ब्रह्म स्तुति के अन्तर्गत मंगलाचरण में शान्त-ज्योतिस्वरूप ब्रह्म को नमस्कार किया गया है। मूर्खनिन्दा प्रकरण में भर्तृहरि ने तीन प्रकार के मनुष्य की गणना की है– अज्ञ, विशेषज्ञ और अल्पज्ञ। इनमें से ज्ञानी, अज्ञानी क्रमशः अतिसुखपूर्वक तथा सुखपूर्वक साध्य हैं, किन्तु अल्पज्ञ को ब्रह्मा भी नहीं साध सकते हैं। उसे किसी भी विषय में समझाना असम्भव है–

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति।।३।।

लोक और शास्त्र में सभी प्रकार के रोगों के लिये औषधियाँ हैं, किन्तु मूर्खता के लिये कोई भी औषधि नहीं है। विद्वत्पद्धति में विद्वान् की महत्ता बतायी गयी है। कवि कहते हैं कि किसी भी राजा के राज्य में यदि कोई कवि विद्वान् निर्धन है, तो यह कवि की नहीं, अपितु राजा की निर्धनता है, भला मणि के मोल को न समझने से मणि का मूल्य कैसे कम हो सकता

है, मोल तो उस कुपरीक्षक का कम होता है, जिसने मणि का उचित मूल्य नहीं लगाया। विद्वान् प्रत्येक स्थिति में राजा से श्रेष्ठ होता है। मानशौर्य पद्धति में कहा गया है कि भगवान् की कृपा से ही किसी को सच्चरित्र पुत्र, पतिव्रता स्त्री, सर्वदा अनुग्रह करने वाले स्वामी प्राप्त होते हैं। भगवत्कृपा न हो तो समस्तसाधनसम्पन्न व्यक्ति भी विधि के विधान को नहीं टाल सकता है। जिस प्रकार से कई दिन से भूखा, दुर्बल, वृद्धावस्था को प्राप्त, शक्तिहीन, तेजहीन गजराज किसी भी स्थिति में सूखी घास नहीं खाता है, अपनी परिस्थितियों से समझौता नहीं करता है, उसी प्रकार से सत्पुरुषजन दुष्टों से किसी भी स्थिति में याचना नहीं करते हैं, न्यायपूर्वक जीविकोपार्जन करते हैं। प्राण का भय होने पर भी वह दुष्कर्म नहीं करते हैं। विपत्ति में भी श्रेष्ठजनों का आचरण नहीं त्यागते हैं। अर्थपद्धति अथवा द्रव्यप्रशंसा के अन्तर्गत कवि ने धन के महत्त्व को समझाया है। धन के न रहने पर या फिर समाप्त हो जाने पर मनुष्य की स्थिति परिवर्तित हो जाती है। जिसके पास द्रव्य अर्थात् धन होता है, वही व्यक्ति कुलीन, पण्डित, गुणज्ञ, वक्ता और दर्शनीय हो जाता है। धन की गति भी तीन प्रकार की होती है—दान, भोग और नाश। जिसने धन का न भोग किया, न दान दिया, उसके धन का स्वतः नाश हो जाता है—

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।।४३।।

इसके पश्चात् कवि ने दुर्जन पद्धति में दुष्ट व्यक्ति के चरित्र का वर्णन किया है। करुणा न करना, अकारण विग्रह करना, पराये धन और परायी स्त्री की चाह करना, अपने लोग और मित्रों की बात को न सुनना इत्यादि दुष्टजन के लक्षण होते हैं—

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषित च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्।।५२।।

गुणों में भी दोषारोपण करना इनका स्वभाव है। अतः इनकी दृष्टि में लज्जावान् पुरुष शिथिल, व्रतधारी दम्भी, पवित्र व्यक्ति पाखण्डी, शूर व्यक्ति निर्दयी, सीधा व्यक्ति मूर्ख होता है। ऐसे दुष्टजन यदि विद्वान् हों तो भी इनका त्याग ही उचित है। सुजन-पद्धति में भर्तृहरि ने सज्जन व्यक्ति का बखान किया है। सज्जन पुरुषों की सत्संग में वाञ्छा, नम्र व्यवहार, विद्या में व्यसन, अपनी स्त्री में ही अनुरक्ति, लोकोपवाद से भय, ईश्वर में भक्ति आदि की प्रवृत्ति होती है। वह सदैव विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में क्षमा, युद्ध में पराक्रम, स्वयश में रुचि रखता है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।६३।।

सज्जन व्यक्ति का चित्त उसके समृद्धि काल में अत्यन्त कोमल रहता है और विपत्ति काल में शिला के समान कठोर हो जाता है। परोपकार पद्धति में परोपकार की महिमा का बखान किया है। परोपकारी पुरुष का स्वभाव फल लगे हुए वृक्ष के समान होता है, वृक्ष पर जितना भी फल लगता जाता है, वह उतना ही झुकता जाता है, उसी प्रकार परोपकार करने वाला व्यक्ति नम्र होता है—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।७१।।

परोपकारी व्यक्ति सदैव ही प्रशंसनीय होते हैं, इनकी संगति में आकर दुर्जन भी गुणवान् हो जाता है। धैर्यपद्धति में कवि यह कहते हैं कि धीरवान् व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति किये बिना किसी भी कार्य को बीच में नहीं छोड़ते हैं। इसीलिये तो समुद्र-मन्थन में अमृत-प्राप्ति न होने तक देवताओं ने विश्राम नहीं किया। इसी प्रकार धीर व्यक्ति कभी न्यायोचित

मार्ग का त्याग नहीं करता है। अतः विपत्ति आने पर भी सज्जन सन्तप्त नहीं होते हैं। कवि कहते हैं–

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न विप्लुता लोके।।८८।।

दैव-प्रशंसा में भाग्य के बलवान् होने को समझाया है। भाग्य के प्रतिकूल होने पर मनुष्य का प्रयत्न कभी फलित नहीं होता है, इसीलिये बृहस्पति जैसा मन्त्री, वज्र जैसा शस्त्र, देवताओं की विशाल सेना और इन सबसे ऊपर विष्णु का इन्द्र पर अनुग्रह– इतने अनुकूल सहायक कारण होने पर भी देवताओं के राजा इन्द्र को असुरों से पराजित होना पड़ा। यह दुष्परिणाम भाग्य के कारण ही प्राप्त हुआ। भाग्यहीन पुरुष कहीं भी जाता है, विपत्ति उसके पीछे-पीछे जाती है। कर्म-पद्धति में कवि ने समझाया है कि भाग्य से ज्यादा बलवान् कर्म है। देवता, मनुष्य तथा कर्मफल आदि सब कर्म के ही अधीन रहते हैं। यह कर्म ही है, जिसने ब्रह्मा को निरन्तर सृष्टिकार्य करने में प्रवृत्त रखा, विष्णु को बारम्बार अवतार ग्रहण करने के लिये उद्यत किया तथा रुद्र को कपाल लेकर भिक्षा मांगने के लिये विवश किया–

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे।।९६।।

पूर्वजन्म में किये गये संचित कर्म ही मनुष्य के सहायक होते हैं। अच्छे कार्य के बिना अच्छे फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अतः सदैव सत्कर्म करने चाहिये। अतः कार्य करने के पूर्व कार्य के विषय में सूक्ष्मता के साथ विचार कर लेना चाहिये। इस प्रकार भर्तृहरि ने इन प्रकरणों के माध्यम से मानव-जीवन के लिये उपयोगी उपदेशों का संग्रह नीतिशतक में किया है और यह उपदेश आज भी मनुष्य जीवन में अपनी सार्थकता बनाये हुए हैं।

बोध प्रश्न 3

1. नीतिशतक में कितनी पद्धतियाँ हैं ? उनके नाम लिखिये।

   ....

   ....

2. मूर्खनिन्दा प्रकरण में भर्तृहरि ने कितने प्रकार के मनुष्य की गणना की है ? लिखिये।

   ....

   ....

3. अर्थपद्धति के अन्तर्गत कवि ने किसका महत्त्व प्रतिपादित किया है ?

   ....

   ....

4. भर्तृहरि के अनुसार धन की कितनी गतियाँ हैं ?

   ....

   ....

5. भर्तृहरि ने दुर्जन व्यक्ति के क्या लक्षण स्वीकार किये हैं ?

   ....

   ....

6. परोपकारी व्यक्ति का स्वभाव कैसा होता है ?

....

....

अभ्यास प्रश्न 3

1. नीतिशतक के प्रतिपाद्य विषय पर टिप्पणी लिखिये।

14.6 सारांश

- भर्तृहरि का जीवन-परिचय प्राप्त हुआ। इनसे सम्बन्धित किंवदन्तियों, लोकोक्तियों का ज्ञान हुआ।
- भर्तृहरि के सामाजिक अनुभव के विषय में जानकारी प्राप्त की।
- शतकत्रय के माध्यम से भर्तृहरि के काव्य-वैशिष्ट्य का ज्ञान हो गया।
- शतकत्रय के अभिधेय अर्थात् विषय-वस्तु का ज्ञान प्राप्त हुआ। अतः भर्तृहरि का संस्कृत साहित्य में महत्त्व एवं उनका साहित्यिक योगदान स्पष्ट हुआ।
- नीतिशतक में प्रतिपादित विभिन्न पद्धतियों के विषय में जानकारी प्राप्त की।
- संक्षिप्त में मुक्तक काव्य के स्वरूप का ज्ञान हुआ।

14.7 शब्दावली

काय – शरीर

तिमिर – अन्धकार

विगलित – नष्ट होना

नितरां कुपित – अत्यन्त क्रुद्ध

वैदग्ध्यकीर्ति – चतुरता के यश

वित्त – धन

कपालपाणिपुटके – मस्तक के कंकाल को दोनों हाथों में थामकर

मदन – कामदेव

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भर्तृहरिशतकत्रयम्, ददन उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१७
2. शतकत्रय में समाज और संस्कृति, डॉ. पुष्पा, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली २०१६
3. नीतिशतकम्, बलवान सिंह यादव, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, २००८
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, १९९९
5. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (छात्रोपयोगी संस्करण), रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री (संपादक), चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, २००३

14.9 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. (i) क्षेमेन्द्र (ii) बलदेव उपाध्याय (iii) परब्रह्म (iv) व्याकरणशास्त्र (v) सुशीला देवी
2. (i) युधिष्ठिर मीमांसक (ii) शृंगारशतक (iii) वीरसेन (iv) अमरुक

बोध प्रश्न 2

1. (i) मुक्तक काव्य (ii) 111 (iii) शार्दूलविक्रीडित (iv) नीतिशतक (v) कामदेव (vi) वैरग्यशतक
2. श्रव्य काव्य के तीन उपभेद हैं – पद्य, गद्य और चम्पू।
3. अग्निपुराण के अनुसार मुक्तक काव्य का लक्षण इस प्रकार है– 'मुक्तकं श्लोक एकैकञ्चमत्कारक्षमं सताम्' अर्थात् मुक्तक काव्य में प्रत्येक श्लोक स्वतन्त्र रूप से अपने सम्पूर्ण अर्थ का प्रकाशन करते हुये सहृदय में चमत्कार उत्पन्न करता है।

बोध प्रश्न 3

1. नीतिशतक में 11 पद्धतियाँ हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं– (1) ब्रह्म की स्तुति (2) मूर्ख निन्दा (3) विद्वत्पद्धति (4) मानशौर्यपद्धति (5) अर्थपद्धति (6) दुर्जनपद्धति (7) सुजनपद्धति (8) परोपकार-पद्धति (9) धैर्यपद्धति (10) दैव-प्रशंसा (11) कर्म-पद्धति
2. मूर्खनिन्दा प्रकरण में भर्तृहरि ने तीन प्रकार के मनुष्य की गणना की है – अज्ञ, विशेषज्ञ और अल्पज्ञ।
3. अर्थपद्धति के अन्तर्गत कवि ने धन का महत्त्व प्रतिपादित किया है।
4. भर्तृहरि के अनुसार धन की तीन गतियाँ हैं– दान, भोग और नाश।
5. करुणा न करना, अकारण विग्रह करना, पराये धन और परायी स्त्री की चाह करना, अपने लोग और मित्रों की बात को न सुनना इत्यादि दुर्जन व्यक्ति के लक्षण हैं।
6. परोपकारी व्यक्ति का स्वभाव फल लगे हुये वृक्ष के समान होता है, वृक्ष पर जितना भी फल लगता जाता है, वह उतना ही झुकता जाता है, उसी प्रकार परोपकारी व्यक्ति भी नम्र होता है।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 15 नीतिशतकम् – श्लोक 1-10

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 काव्यांश की व्याख्या

- 15.2.1 मंगलाचरण
- 15.2.2 सदुक्ति की स्थिति
- 15.2.3 मूर्ख की दुराराध्यता
- 15.2.4 मूर्खों का गुण
- 15.2.5 अल्पज्ञता की भयंकरता
- 15.2.6 क्षुद्र प्राणी की अज्ञानता
- 15.2.7 विवेकहीन लोगों का पतन

15.3 सारांश

15.4 शब्दावली

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- भर्तृहरि के काव्य-सौष्ठव को समझ सकेंगे।
- विद्वान् और मूर्ख के मध्य अन्तर को समझ सकेंगे।
- विद्या से रहित व्यक्ति की भयंकरता को जान सकेंगे।
- विद्या विहीन को प्रसन्न करना कितना कठिन है, यह जान सकेंगे।
- विद्या के महत्त्व को जान सकेंगे।
- सुन्दर सूक्तियों के प्रभाव को पहचान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने भर्तृहरि के जीवन-वृत्त को जाना । आप यह जानते हैं कि भर्तृहरि महान् कवि, दार्शनिक और भाषातत्त्ववेत्ता थे, उन्होंने तीन शतकों की रचना की है। जो नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक नाम से प्रसिद्ध हैं। नीतिशतक के प्रारम्भिक 20 पद्य आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं। प्रस्तुत इकाई में आप नीतिशतक के प्रथम दस पद्यों का अध्ययन करेंगे।

नीतिशतक का तात्पर्य है नीति विषयक 100 पद्य। इस शतक में कुल 111 पद्य हैं, जिनमें भर्तृहरि ने नीतिविषयक अनेक विषयों की चर्चा की है। इन श्लोकों के अध्ययन से यह ज्ञात

होता है कि समस्त पद्यों में निबद्ध विषय उनके जीवन का अनुभूत सत्य है। समाज के विभिन्न विषयों का आलोचन कर भर्तृहरि ने विद्वान् को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि विद्वान् राजा से भी बढ़कर है तथा विद्या से बड़ी कोई भी सम्पत्ति नहीं है। भर्तृहरि के नीतिशतक को संस्कृत के विद्वानों ने ग्यारह पद्धतियों में विभक्त किया है – ब्रह्म की स्तुति, मूर्खपद्धति, विद्वत्पद्धति, मान-शौर्यपद्धति, अर्थपद्धति, दुर्जनपद्धति, सुजनपद्धति, परोपकारपद्धति, धैर्यपद्धति, दैवपद्धति तथा कर्मपद्धति। इस इकाई में मूर्खपद्धति के 10 पद्यों की व्याख्या की जा रही है। इन्हें पढ़कर आप जीवन के अनेक पक्षों का अनुभव प्राप्त करेंगे।

भर्तृहरि के उक्त पद्य उनके अनुभवों से प्रसूत हैं। उन्होंने विद्वान् और मूर्ख के बीच के अन्तर को रेखांकित करते हुये, इन पद्यों में विद्वान् की महत्ता को प्रतिपादित किया है।

15.2 काव्यांश की व्याख्या

15.2.1 मंगलाचरण

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे।।1।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से कवि अपने ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये परब्रह्म परमेश्वर की वन्दना करता हुआ, उसे नमस्कार करता है। ग्रन्थ के आदि में किया गया मंगलाचरण पाठकों, व्याख्याकारों तथा शिष्य परम्परा का कल्याण कारक होता है। अतः कविवर भर्तृहरि ने सर्वप्रथम परमेश्वर की स्तुति को उपस्थापित किया है।

अन्वयः – दिक्कालाद्यनवच्छिन्न–अनन्तचिन्मात्रमूर्तये स्वानुभूत्येकमानाय शान्ताय तेजसे नमः।

शब्दार्थ – दिक्काल = पूर्व आदि दिशायें तथा भूत, वर्तमान, भविष्य आदि काल, अनवच्छिन्न = जिसे मापा न जा सके, अनन्त = अन्त रहित, चिन्मात्रमूर्तये = चैतन्य विग्रह वाले, स्वानुभूत्येकमानाय = अनुभव मात्र से गम्य, शान्ताय = शान्त स्वरूप, तेजसे = ज्योति स्वरूप युक्त, नमः = नमस्कार है।

सन्धि –

दिक्कालादि	– दिक्काल + आदि	(दीर्घ सन्धि)
अनवच्छिन्नानन्त	– अनवच्छिन्न + अनन्त	(दीर्घ सन्धि)
चिन्मात्र	– चित् + मात्र	(हल् अनुनासिक सन्धि)
अनुभूत्येकमानाय	– अनुभूति + एकमानाय	(यण् सन्धि)

समास –

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये – दिक् च कालः च, दिक्कालौ (द्वन्द्व समास), दिक्कालौ आदी येषां ते, दिक्कालादयः (बहुव्रीहि समास), दिक्कालादिभिः अनवच्छिन्नं, दिक्कालाद्यनवच्छिन्नम् (तृतीया तत्पुरुष समास), दिक्कालाद्यनवच्छिन्नम् अनन्तं चिन्मात्रमूर्तिः यस्य सः दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तिः, (बहुव्रीहि समास) तस्मै।

स्वानुभूत्येकमानाय – स्वस्य अनुभूतिः, स्वानुभूतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्वानुभूतिः एव एकं मानं यस्य तत्, स्वानुभूत्येकमानम् (बहुव्रीहि समास), तस्मै।

अनुवाद – पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दस दिशाओं तथा भूत, भविष्य और वर्तमान रूप तीनों कालों से जो मापा नहीं जा सकता, जो अन्त रहित है, चैतन्य स्वरूप है तथा जो अपने अनुभव मात्र से जाना जा सकता है, उस शान्त, तेजस्वरूप परब्रह्म को नमस्कार है।

छन्द – अनुष्टुप्।

लक्षणम् – श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोः ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अनुष्टुप् या श्लोक के प्रत्येक पाद में 8 अक्षर होते हैं। इसमें षष्ठ अक्षर सदा गुरु होता है और पंचम अक्षर सदा लघु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु होता है और प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते हैं।

विशेष – भारतवर्ष में किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व अपने इष्ट देव की आराधना करने की परम्परा है। इस आराधना को मंगलाचरण कहते हैं। यह मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है – नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक। प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने सर्वव्यापक परमेश्वर को नमस्कार करके नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया है।

15.2.2 सदुक्ति की स्थिति

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्।।2।।

प्रसंग – समाज में विद्वानों की मत्सरग्रस्तता तथा राजाओं की अहंकारग्रस्तता को देखते हुये कवि का मानना है कि सुकवि की उक्तियाँ उसके हृदय में ही नष्ट हो जायें। ईर्ष्याग्रस्त होने के कारण विद्वान् उसे सुनेंगे नहीं। गर्वान्वित होने के कारण राजा उसका सम्मान नहीं करेगा तथा सामान्य जन अबोध ग्रस्त होने के कारण उसे समझने में समर्थ नहीं है।

अन्वयः – बोद्धारः मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः। अन्ये च अबोधोपहताः (सन्ति अतः) सुभाषितम् अङ्गे जीर्णम्।

शब्दार्थ – बोद्धारः = परिज्ञाता विद्वान्, मत्सरग्रस्ताः = मात्सर्य से ग्रस्त, प्रभवः = राजा गण, स्मयदूषिताः = गर्व से दूषित हैं। अन्ये च = इन दोनों से अतिरिक्त लोग, अबोधोपहताः = अज्ञान से उपहत, सुभाषितम् = सदुक्ति, अङ्गे = मुख में, जीर्णम् = नष्ट हो गई।

सन्धि –

अबोधोपहताः – अबोध + उपहताः (गुण सन्धि)

चान्ये – च + अन्ये (दीर्घ सन्धि)

समास –

मत्सरग्रस्ताः – मत्सरेण ग्रस्ताः (तृतीया तत्पुरुष समास)

स्मयदूषिताः – स्मयेन दूषिताः (तृतीया तत्पुरुष समास)

अबोधः – न बोधः (नञ् तत्पुरुष समास)

अबोधोपहताः – अबोधेन उपहताः (तृतीया तत्पुरुष समास)

अनुवाद – कवि के सुभाषित वचनों का कोई भी व्यक्ति सच्चा पारखी नहीं है, क्योंकि विद्वद्वर्ग ईर्ष्याग्रस्त हैं तथा नृपवृन्द गर्व से मत्त हैं और अन्य साधारण शिक्षित लोग अज्ञान

से दबे हुए हैं। अतः सुभाषित आज तक कवि के हृदय में ही रह गया, उसे बाहर निकलने का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ।

छन्द – अनुष्टुप्।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

15.2.3 मूर्ख की दुराराध्यता

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति।।3।।

प्रसंग – महाकवि भर्तृहरि अज्ञानी, विशेषज्ञ तथा मूर्ख में अन्तर बताते हुये कहते हैं कि इन तीनों में स्वल्प ज्ञान से अहंकृत मूर्ख सबसे भयंकर होता है तथा उसे ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकता।

अन्वयः – अज्ञः सुखम् आराध्यः विशेषज्ञः सुखतरम् आराध्यते ब्रह्मा अपि ज्ञानलवदुर्विदग्धं नरं न रञ्जयति।

शब्दार्थ – अज्ञः = अज्ञानी, सुखम् = कुछ प्रयास से, आराध्यः = प्रसन्न करने योग्य, विशेषज्ञः = ज्ञानी, सुखतरम् = बिना किसी प्रयास के, आराध्यते = सन्तुष्ट किया जा सकता है, ब्रह्मापि = ब्रह्मा भी, ज्ञानलवदुर्विदग्धम् = अल्प ज्ञान वाले, नरम् = पुरुष को, न रंजयति = प्रसन्न नहीं कर सकता।

सन्धि – **ब्रह्मापि** – ब्रह्मा + अपि (दीर्घ सन्धि)

समास – **अज्ञः** – न ज्ञः अज्ञः (नञ् तत्पुरुष समास)

विशेषज्ञः – विशेषं जानाति इति विशेषज्ञः (उपपद तत्पुरुष समास)

ज्ञानलवदुर्विदग्धम् – ज्ञानस्य लवः ज्ञानलवः (षष्ठी तत्पुरुष समास)
ज्ञानलवेन दुर्विदग्धम् (तृतीया तत्पुरुष समास)

अनुवाद – अज्ञानी मनुष्य को कुछ प्रयास करके प्रसन्न किया जा सकता है। विशिष्ट विद्वान् को बिना किसी प्रयास के प्रसन्न किया जा सकता है। किन्तु अल्पज्ञान से भयंकर व्यक्ति को स्वयं ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकते।

छन्द – आर्या।

लक्षणम् – यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम पाद में 12 मात्रायें होती हैं, द्वितीय में 18, तृतीय में 12 और चतुर्थ में 15 मात्रायें होती हैं।

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि सन्तरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।4।।

प्रसंग – मूर्ख की विशेषता बताते हुये भर्तृहरि का कहना है कि प्रचण्ड लहरों से व्याप्त समुद्र को तैरना तथा अन्य उस प्रकार के कठिन कार्य करना सम्भव है किन्तु मूर्ख के चित्त को प्रसन्न करना सर्वथा असम्भव है।

अन्वयः – मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् मणिं प्रसह्य उद्धरेत्। प्रचलत् - ऊर्मिमाला - आकुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत्। कोपितं भुजङ्गम् अपि पुष्पवत् शिरसि धारयेत्। तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

शब्दार्थ – मकरवक्त्र-दंष्ट्रान्तरात् = मगरमच्छ की दाढ़ों के बीच से, मणिम् = रत्न को, प्रसह्य = शक्तिपूर्वक, उद्धरेत् = छुड़ा ले, प्रचलत्-ऊर्मिमाला-आकुलम् = चपल लहरों की पंक्तियों से व्याप्त भयंकर, समुद्रम् अपि = सागर को भी, सन्तरेत् = पार कर ले। कोपितम् = क्रोधित हुए, भुजङ्गम् अपि = साँप को भी, पुष्पवत् = पुष्प की तरह, शिरसि = सिर पर, धारयेत् = रख ले। तु = किन्तु, प्रतिनिविष्ट-मूर्खजनचित्तम् = दुराग्रही एवं मूर्ख व्यक्ति के मन को, न आराधयेत् = सन्तुष्ट करने का प्रयास न करें।

सन्धि – **ऊर्मिमालाकुलम्** – ऊर्मिमाला + आकुलम् (दीर्घ सन्धि)

पुष्पवद्धारयेत् – पुष्पवत् + धारयेत् (जश्त्व सन्धि)

समास – **मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्** – मकरस्य वक्त्रं, मकरवक्त्रं (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्मिन् दंष्ट्राः मकरवक्त्रदंष्ट्राः (सप्तमी तत्पुरुष समास), मकरवक्त्रदंष्ट्रानाम् अन्तरं मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरं (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्मात् ।

प्रचलदूर्मिमालाकुलम् – प्रचलन्त्यः ताः ऊर्मयः च प्रचलदूर्मयः (कर्मधारय) प्रचलदूर्मीनां मालाः प्रचलदूर्मिमालाः (षष्ठी तत्पुरुष समास) ताभिः मालाभिः आकुलम् (तृतीया तत्पुरुष समास) ।

प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम् – प्रतिनिविष्टः च असौ मूर्खजनः, प्रतिनिविष्टमूर्खजनः (कर्मधारय समास) प्रतिनिविष्टमूर्खजनस्य चित्तम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)

अनुवाद – मनुष्य चाहे तो मगरमच्छ की दाढ़ों के बीच से मणि को जबरदस्ती निकाल सकता है। बड़ी-बड़ी लहरों से परिपूर्ण समुद्र को भी पार कर सकता है। क्रोध से उद्दीप्त सर्प को फूल की तरह अपने सिर पर धारण कर सकता है। किन्तु जिसके मन में कोई बात बैठ गई है (जो शंका से भर गया है), ऐसे हठी मूर्ख के चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकता है।

छन्द – पृथ्वी।

लक्षणम् – जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।

अर्थात् पृथ्वी छन्द के प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, लघु और गुरु होते हैं तथा आठवें और नौवें वर्ण पर विराम होता है।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटंछशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।5।।

प्रसंग – मूर्ख की दुराराध्यता को पुनः पुष्ट करते हुये कविवर भर्तृहरि का कहना है कि बालू से तेल निकालना, मृगतृष्णा में पानी प्राप्त करना, खरगोश के सींग प्राप्त करना जैसे दुस्साध्य कार्य सम्भव हैं किन्तु मूर्ख को प्रसन्न करना सर्वथा असम्भव है।

अन्वयः – यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत, पिपासार्दितः च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत्, पर्यटन् कदाचित् शशविषाणम् अपि आसादयेत्, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं तु न आराधयेत्।

शब्दार्थ – यत्नतः = परिश्रम से, पीडयन् = निचोड़ते हुये, सिकतासु = बालू के कणों में, अपि = भी, तैलम् = तेल को, लभेत = प्राप्त कर लें, च = और, पिपासार्दितः = प्यास से तड़पता हुआ, मृगतृष्णिकासु = मृगमरीचिकाओं में, सलिलम् = जल को, पिबेत् = पी सकता है, पर्यटन् = भ्रमण करता हुआ, कदाचित् = कभी, शशविषाणम् = खरगोश के सींग को, आसादयेत् = प्राप्त कर सकता है, तु = किन्तु, प्रतिनिविष्ट-मूर्खजनचित्तम् = दुराग्रहशाली शंकालू मूर्ख के मन को, न आराधयेत् = प्रसन्न नहीं किया जा सकता है।

सन्धि –

पिबेच्च – पिबेत् + च (श्चुत्व सन्धि)

पिपासार्दितः – पिपासा + आर्दितः (दीर्घ सन्धि)

पर्यटंछशविषाणम् – पर्यटन् + शशविषाणम् (श्चुत्व-छत्व सन्धि)

समास –

मृगतृष्णिकासु – मृगाणां तृष्णा मृगतृष्णा (षष्ठी तत्पुरुष समास) तासु

शशविषाणम् – शशस्य विषाणम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)

पिपासार्दितः – पिपासया आर्दितः (तृतीया तत्पुरुष समास)

प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम् –प्रतिनिविष्टमूर्खजनस्य चित्तम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)

अनुवाद – कोई भी मनुष्य परिश्रम करके बालू से तेल निकाल सकता है (जो कि असम्भव है)। प्यास से तड़पता हुआ व्यक्ति मृगमरीचिका में भी पानी पा सकता है (जो कि दुर्लभ है)। इधर-उधर भटकता हुआ व्यक्ति खरगोश के सींग पा सकता है (जो होता ही नहीं। इतने सब असम्भव कार्य हो सकते हैं)। किन्तु दुराग्रहशाली हठधर्मी मूर्ख के चित्त को प्रसन्न करना कभी भी सम्भव नहीं है।

छन्द – पृथ्वी।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।।6।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में कवि भर्तृहरि ने विविध दृष्टान्तों से स्पष्ट किया है कि मूर्ख को किसी भी प्रकार से सन्तुष्ट करना असम्भव है।

अन्वयः – यः सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः खलान् सतां पथि नेतुं वाञ्छति, असौ बालमृणालन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृम्भते, शिरीषकुसुमप्रान्तेन वज्रमणिं छेत्तुं सन्नह्यते, मधुबिन्दुना क्षाराम्बुधेः माधुर्यं रचयितुम् (च) ईहते (इव)।

शब्दार्थ – यः = जो मनुष्य, सुधास्यन्दिभिः = अमृत बरसाने वाली, सूक्तैः = सदुपयोगी उक्तियों द्वारा, खलान् = दुष्टों को, पथि = रास्ते पर, नेतुम् = लाने की, वाञ्छति = इच्छा रखता है, असौ = वह मनुष्य, बालमृणालतन्तुभिः = कमल के कोमल रेशों से, व्यालम् = पागल हाथी को, रोद्धुम् = रोक पाने का, समुज्जृम्भते = प्रयास करता है, शिरीषकुसुमप्रान्तेन = कोमल शिरीष पुष्प की नोंक से, वज्रमणिम् = कठोर रत्न को (हीरे को), छेत्तुम् = छेदने का, सन्नह्यते = अभ्यास करता है, मधुबिन्दुना = शहद की बूँद से, क्षाराम्बुधेः = सागर के नमकीन जल को, माधुर्यम् = मीठा, रचयितुम् = बनाना, ईहते = चाहता है।

सन्धि –

तन्तुभिरसौ – तन्तुभिः + असौ (विसर्ग सन्धि)

क्षाराम्बुधेरीहते – क्षार + अम्बुधेः (दीर्घ सन्धि), क्षाराम्बुधेः+ ईहते (विसर्ग सन्धि)

समास –

सुधास्यन्दिभिः – सुधां स्यन्दन्ते तच्छीलानि सुधास्यन्दीनि, तैः (तृतीया तत्पुरुष समास)

शिरीषकुसुमप्रान्तेन – शिरीषकुसुमस्य प्रान्तः शिरीषकुसुमप्रान्तः, तेन (तृतीया तत्पुरुष समास)

मधुबिन्दुना – मधोः बिन्दुः मधुबिन्दुः, तेन (षष्ठी तत्पुरुष समास)

क्षाराम्बुधेः – क्षारश्चासौ अम्बुधिश्च क्षाराम्बुधिः (कर्मधारय समास) तस्य

अनुवाद – जो मनुष्य अमृत बरसाने वाली सदुपयोगी उक्तियों द्वारा दुष्टों को सही रास्ते पर लाने की इच्छा रखता है, उसका प्रयास वैसे ही है जैसे कोई मनुष्य कमल के कोमल रेशों से पागल हाथी को रोकने का प्रयास करता है। जैसे कोई कोमल शिरीष के पुष्प की नोंक से कठोर रत्न को (हीरे को) छेदने का अभ्यास करता है या जैसे कोई शहद की बूँद से सागर के खारे जल को मीठा बनाना चाहता है। अर्थात् जैसे ये सभी कार्य दुष्कर या असम्भव हैं, वैसे ही दुर्जनों को सदुक्तियों या मधुर वाणी से सन्मार्ग पर लाना असम्भव है।

छन्द – शार्दूलविक्रीडित।

लक्षणम् – सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु होता है तथा सात-सात वर्णों पर विराम होता है।

15.2.4 मूर्खों का गुण

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे

विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।7।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में भर्तृहरि ने विद्वानों की सभा में मौन को मूर्ख का अलंकार कहा है।

अन्वयः – विधात्रा अपण्डितानां स्वायत्तम् एकान्तगुणम् अज्ञतायाः छादनं मौनं विनिर्मितम्। (इदं) सर्वविदां समाजे विशेषतः (अपण्डितानाम्) विभूषणम्।

शब्दार्थ – विधात्रा = विधाता (ब्रह्मा जी) ने, अपण्डितानाम् = मूर्खों के लिए, स्वायत्तम् = स्वतन्त्र, एकान्तगुणम् = अत्यधिक गुणों वाली, अज्ञतायाः = अज्ञानता का, छादनम् = आवरण, मौनम् = मौन को, विनिर्मितम् = निर्मित किया है, सर्वविदाम् = ज्ञाताओं के, समाजे = समाज में, विशेषतः = विशेष रूप से, विभूषणम् = आभूषण।

समास –

अपण्डितानाम् – न पण्डिताः अपण्डिताः (नञ् तत्पुरुष समास) तेषाम्

सर्वविदाम् – सर्वं विदन्तीति सर्वविदः (नित्य समास) तेषाम्

अनुवाद – विधाता (ब्रह्मा जी) ने मूर्खों के लिए स्वतन्त्र अत्यधिक गुणों वाली अज्ञानता का आवरण करने के लिये मौन को निर्मित किया है, ज्ञाताओं के समाज में विशेष रूप से यह आभूषण है। अर्थात् विद्वानों के समक्ष मूर्खों का मौन रहना उनका एक आभूषण है।

छन्द – उपजाति।

लक्षणम् – अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्द के मिश्रण को उपजाति छन्द कहते हैं।

15.2.5 अल्पज्ञता की भयंकरता

**यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।8।।**

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में नीतिकार ने स्पष्ट किया है कि विद्वानों के समागम से अल्पज्ञ मनुष्य के अहंकार का विनाश होता है।

अन्वय – यदा अहं किंचिज्ज्ञः द्विपः इव मदान्धः समभवं तदा सर्वज्ञः अस्मि इति मम मनः अवलिप्तम् अभवत् (किन्तु) यदा बुधजनसकाशात् किंचित् किंचित् अवगतं तदा अहं मूर्खः अस्मि इति मे मदः ज्वरः इव व्यपगतः।

शब्दार्थ – यदा = जब, अहम् = मैं, किंचिज्ज्ञः = अल्पज्ञानी था, द्विपः इव = हाथी के समान, मदान्धः = मदमत्त (मद से अन्धा), समभवम् = हो गया था, तदा = तब, सर्वज्ञः = सब कुछ जानने वाला, अस्मि = हूँ, इति = इस प्रकार, मम = मेरा, मनः = चित्त, अवलिप्तम् = गर्वित, अभवत् = हुआ, यदा = जब, बुधजनसकाशात् = विद्वानों के समागम से, किंचित् किंचित् = कुछ-कुछ, अवगतम् = सीखा, तदा = तब, अहं मूर्खः अस्मि = मैं तो अज्ञानी (मूर्ख) हूँ, इति = इस प्रकार, मे = मेरा, मदः = घमण्ड, ज्वरः इव = ज्वर की तरह, व्यपगतः = दूर हो गया।

मदान्धः – मद + अन्धः (दीर्घ सन्धि)

सर्वज्ञोऽस्मि – सर्वज्ञः + अस्मि (विसर्ग सन्धि)

ज्वर इव – ज्वरः + इव (विसर्ग सन्धि)

समास –

किंचिज्ज्ञः – किंचित् जानाति इति किंचिज्ज्ञः (नित्य समास)

सर्वज्ञः – सर्वं जानाति इति सर्वज्ञः (नित्य समास)

अनुवाद – जब मैं अल्पज्ञानी था, मुझे शास्त्रों का अधिक ज्ञान नहीं था तब मैं हाथी के समान मदमत्त (मद से अन्धा) हो गया था। उस समय, सब कुछ जानने वाला हूँ, इस प्रकार मेरा चित्त गर्वित हुआ अर्थात् शास्त्रों का अल्पज्ञान पाकर मैं अहंकार के वशीभूत होकर अपने को सब कुछ जानने वाला हूँ ऐसा समझने लगा था, किन्तु जब विद्वानों के समागम से कुछ-कुछ सीखने लगा तब मुझे ज्ञान हुआ कि मैं तो अज्ञानी (मूर्ख) हूँ, इस प्रकार मेरा घमण्ड ज्वर की तरह दूर हो गया (मेरा ज्ञानी होने का अहंकार विद्वानों के सम्पर्क में आने से चूर-चूर हो गया)।

छन्द – शिखरिणी।

लक्षणम् – रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में यगण, मगण, नगण, सगण, मगण, लघु और गुरु होता है तथा छठें और ग्यारहवें वर्ण पर विराम होता है।

15.2.6 क्षुद्र प्राणी की अज्ञानता

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं
निरुपमरसप्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य विशङ्कते
न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुःपरिग्रहफल्गुताम्।।9।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में कविवर भर्तृहरि ने प्रतिपादित किया है कि नीच कर्म करते हुये अधम व्यक्ति को उत्तम व्यक्तियों से भी शंका होती है।

अन्वयः – श्वा कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जगुप्सितं निरामिषं नरास्थि निरुपमरसप्रीत्या खादन् पार्श्वस्थं सुरपतिम् अपि विलोक्य विशङ्कते हि क्षुद्रः जन्तुः परिग्रहफल्गुतां न गणयति।

शब्दार्थ – श्वा = कुक्कुर (कुत्ता), कृमिकुलचितम् = कीड़ों के समूह से परिपूर्ण, लालाक्लिन्नम् = मुँह की लार से गीले, विगन्धि = दुर्गन्धयुक्त, जुगुप्सितम् = घृणित, निरामिषम् = बिना मांस के, नरास्थि = मनुष्य की अस्थि (हड्डी) को, निरुपमरसप्रीत्या = अत्यधिक स्वादिष्ट की तरह, खादन् = खाता हुआ, पार्श्वस्थम् = समीप में स्थित, सुरपतिम् अपि = देवराज इन्द्र को भी, विलोक्य = दृष्टिगत कर, विशङ्कते = शंकायुक्त होता है, हि = क्योंकि, क्षुद्रो जन्तुः = अधम प्राणी, परिग्रहफल्गुताम् = प्राप्त की हुई वस्तुओं की निस्सारता को, न गणयति = विचारता नहीं है।

सन्धि –

नरास्थि – नर + अस्थि (दीर्घ सन्धि)

समास –

कृमिकुलेन – कृमीनां कुलं कृमिकुलं (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन

निरामिषम् – निर्गतम् आमिषं यस्मात् (बहुव्रीहि समास) तत्

नरास्थि – नरस्य अस्थि (षष्ठी तत्पुरुष समास)

निरुपमरसप्रीत्या – निरुपमो रसः यस्य सः निरुपमरसः (बहुव्रीहि समास) तस्मिन् निरुपमरसे, निरुपमरसे या प्रीतिः निरुपमरसप्रीतिः (सप्तमी तत्पुरुष समास) तया

सुरपतिम् – सुराणां पतिः सुरपतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तम्

परिग्रहफल्गुताम् – परिग्रहस्य फल्गुता परिग्रहफल्गुता (षष्ठी तत्पुरुष समास) ताम्

फल्गुता – फलं गतं यस्मात् सः फल्गुः, तस्य भावः

अनुवाद – कुक्कुर (कुत्ता) कीड़ों के समूह से परिपूर्ण, मुँह की लार से गीले दुर्गन्धयुक्त घृणित मांस रहित मनुष्य की अस्थि (हड्डी) को अत्यधिक स्वादयुक्त की तरह खाता हुआ समीप में स्थित देवराज इन्द्र को भी दृष्टिगत कर शंकायुक्त होता है कि कहीं यह मेरा भोजन तो नहीं छीन लेगा। क्योंकि अधम जीव प्राप्त की हुई वस्तुओं की अनुपयोगिता का विचार नहीं करता है अथवा ध्यान नहीं देता है।

छन्द – हरिणी।

लक्षणम् – रसयुगहयैः न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु तथा गुरु होते हैं। छठें, दसवें तथा अन्तिम वर्ण में विराम होता है।

15.2.7 विवेकहीन लोगों का पतन

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।10।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में विवेक रहित व्यक्तियों के क्रमिक अधःपतन को स्पष्ट किया गया है।

अन्वयः – इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं शिरः, पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम् उत्तुङ्गात् महीध्रात् अवनिम्, अवनेः च अपि जलधिम्, अधोऽधः स्तोकं पदम् उपगता अथवा विवेकभ्रष्टानां शतमुखः विनिपातः भवति।

शब्दार्थ – इयम् = यह, गङ्गा = गंगा नदी, स्वर्गात् = स्वर्गलोक से, शार्वम् = भगवान् शिव के, शिरः = सिर पर, पशुपतिशिरस्तः = शिवजी के सिर से (जटा से), क्षितिधरम् = पर्वत पर, उत्तुङ्गात् = ऊँचाई वाले, महीध्रात् = पर्वत (हिमालय) से, अवनिम् = धरती पर, अवनेः = धरती से, च अपि = और भी, जलधिम् = सागर में, अधोऽधः = नीचे-नीचे, स्तोकम् = तुच्छ, पदम् = पद को, उपगता = पहुँची, अथवा, विवेकभ्रष्टानाम् = अच्छे-बुरे को न जानने वालों का, शतमुखः = हजारों प्रकार से, विनिपातः = पतन (अधोगति की प्राप्ति), भवति = होता है।

सन्धि –

महीध्रादुत्तुङ्गात् – महीध्रात् + उत्तुङ्गात् (जश्त्व सन्धि)

उत्तुङ्गादवनिम् – उत्तुङ्गात् + अवनिम् (जश्त्व सन्धि)

अवनेश्च – अवनेः + च (अवनेस् + च, अवनेश् + च) (विसर्गसन्धि, श्चुत्व सन्धि)

चापि – च + अपि (दीर्घ सन्धि)

अधोऽधः – अधः + अधः (विसर्ग सन्धि, पूर्वरूप सन्धि)

गङ्गेयम् – गङ्गा + इयम् (गुण सन्धि)

समास –

पशुपतिशिरस्तः – पशूनां पतिः पशुपतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पशुपतेः शिरः पशुपतिशिरः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्मात्

क्षितिधरम् – धरतीति धरः (कृद्वृत्तिः) क्षितेः धरः क्षितिधरः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तम्

विवेकभ्रष्टानां – विवेकात् भ्रष्टाः विवेकभ्रष्टाः (पंचमी तत्पुरुष समास) तेषाम्

शतमुखः – शतं मुखानि यस्य सः (बहुव्रीहि समास)

अनुवाद – यह गंगा नदी स्वर्गलोक से भगवान् शिव के सिर पर, शिवजी के सिर से (जटा से) पर्वत पर और ऊँचाई वाले पर्वत (हिमालय) से भी धरती पर इसी प्रकार क्रमशः नीचे-नीचे होती हुयी धरती से भी नीचे सागर में अधोगति को पहुँची। अतः यह उचित ही है कि अच्छे-बुरे को न जानने वालों का हजारों प्रकार से पतन निश्चित ही होता है अर्थात् अविवेकी मनुष्य सर्वदा ही अधोगति को प्राप्त होता है।

छन्द – शिखरिणी।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

बोध प्रश्न–

1. नीचे दिये गये कथनों में से सत्य (√) तथा असत्य (x)कथन का चयन कीजिए–

i) भर्तृहरि ने नीतिशतक के मंगलाचरण में पर ब्रह्म को नमस्कार किया है। ( )

ii) नीतिशतक का मंगलाचरण वस्तुनिर्देशात्मक है । ( )

iii) नीतिशतक में नौ पद्धतियाँ हैं। ( )

iv) हठी मूर्ख के चित्त को प्रसन्न किया जा सकता है। ( )

v) अधम जीव प्राप्त की हुई वस्तुओं की अनुपयोगिता का विचार नहीं करता है।( )

vi) विवेकहीनों का विनिपात सैकड़ों प्रकार से होता है। ( )

अभ्यास प्रश्न–

1. ब्रह्मा भी किस मनुष्य को प्रसन्न नहीं कर सकता ?
2. 'प्रचलदूर्मिमालाकुलम्' का समास विग्रह बताइये ।
3. मधुरसूक्तियों से किसे मार्ग पर नहीं लाया जा सकता ?
4. मौन किसका आभूषण है ?
5. 'लभेत सिकतासु तैलमपि' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

15.3 सारांश

नीतिशतक के प्रारम्भ में भर्तृहरि ने प्रकाशस्वरूप परब्रह्म की वन्दना की है। तदनतर उन्होंने काम की निस्सारता का प्रतिपादन किया है। उन्होंने कहा है कि अज्ञव्यक्ति को बिना किसी परिश्रम के प्रसन्न किया जा सकता है तथा विशिष्ट विद्वान् को कुछ परिश्रम के साथ भी समझाया जा सकता है किन्तु स्वल्प ज्ञान से भयंकर मूर्ख को समझा पाना सम्भव नहीं है। कोई भी व्यक्ति कठिन से कठिन कार्य कर सकता है किन्तु दुराग्रही मूर्ख को प्रसन्न नहीं कर सकता । लोक का उदाहरण देते हुये भर्तृहरि कहते हैं कि कोई बालू से तेल भी निकाल सकता है, मृगमरीचिका में पानी भी पा सकता है, इधर-उधर घूमता हुआ खरगोश का सींग भी पा सकता है किन्तु हठी मूर्ख को प्रसन्न नहीं कर सकता। मूर्ख की निन्दा करते हुये उन्होंने उसे विद्वानों की सभा में मौन रहने का ही सुझाव दिया है। 'अल्पविद्या भयंकरी' के सिद्धान्त को उन्होंने स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि जब मैं अल्पज्ञ था तब मैं हाथी की तरह मतवाला हो रहा था कि मेरे समान और कोई विद्वान् नहीं है किन्तु जब विद्वानों के पास जाकर मैंने कुछ ज्ञान अर्जित किया तब मुझे पता चला कि मैं मूर्ख हूँ और मेरा अहंकार ज्वर की तरह उतर गया। उन्होंने मूर्ख की अनेक प्रकार से निन्दा करते हुये यह शिक्षा दी है कि हमें कभी भी मूर्खता का आचरण नहीं करना चाहिये।

15.4 शब्दावली

दिक्काल	=	पूर्व आदि दिशायें तथा भूत, वर्तमान, भविष्य आदि काल ।
चिन्मात्रमूर्तये	=	चैतन्य विग्रह वाले ।
स्वानुभूत्येकमानाय	=	अनुभव मात्र से गम्य ।
अन्यसक्तः	=	दूसरे पर आसक्त है।
ज्ञानलवदुर्विदग्धम्	=	अल्प ज्ञान वाले।
प्रसह्य	=	शक्तिपूर्वक।
सुधास्यन्दिभिः	=	अमृत बरसाने वाली।
किंचिज्ज्ञः	=	अल्पज्ञानी ।

बुधजनसकाशात् = विद्वानों के समागम से।

कृमिकुलचितम् = कीड़ों के समूह से परिपूर्ण।

परिग्रहफल्गुताम् = प्राप्त की हुई वस्तुओं की निस्सारता को।

पशुपतिशिरस्तः = शिवजी के शिर से।

उत्तुङ्गात् = ऊँचाई वाले।

विनिपातः = पतन (अधोगति की प्राप्ति)।

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भर्तृहरिशतकत्रयम्, सम्पादकः – पु. गोपीनाथ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2010।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी, 2001
3. वृत्तरत्नाकरः, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011।
4. अमरकोश, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड़, दिल्ली, 2011।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009।

15.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–

1. (i) सही (ii) गलत (iii) गलत

   (iv) गलत (v) सही (vi) सही

अभ्यास प्रश्न–

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे।

इकाई 16 नीतिशतकम् (श्लोक 11-20)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 काव्यांश की व्याख्या

16.2.1 मूर्ख की औषधि का अभाव

16.2.2 साहित्य और संगीत आदि की प्रशंसा

16.2.3 विद्या आदि का महत्त्व

16.2.4 मूर्ख संसर्ग का निषेध

16.2.5 विद्वानों के सम्मान का प्रस्ताव

16.2.6 विद्या का महत्त्व

16.2.7 विद्वानों का संरक्षण

16.2.8 गुणों की दुरपवारता

16.2.9 सर्वोत्तम आभूषण

16.2.10 सर्वोत्तम धन

16.3 सारांश

16.4 शब्दावली

16.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- भर्तृहरि के द्वारा प्रतिपादित मूर्खता के लक्षणों को समझ सकेंगे।
- मूर्खता की कोई औषधि नहीं है, यह जान सकेंगे।
- जीवन में साहित्य, संगीत और कला के महत्त्व को जान सकेंगे।
- विद्या और तप आदि से रहित मनुष्य की पशुता को जान सकेंगे।
- विद्वानों के महत्त्व को जान सकेंगे।
- विद्या ही सबसे बड़ा धन है, यह जान सकेंगे।
- विभिन्न शब्दों के सन्धि और समासों को जान सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने नीतिशतक की मूर्ख पद्धति के 10 श्लोकों का अध्ययन किया। आपने जाना कि संसार का कठिन से कठिन कार्य कर पाना सम्भव है किन्तु मूर्खजन को प्रसन्न

करना अतिदुष्कर है। आपने यह भी जाना कि विद्या मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा धन है। प्रस्तुत इकाई में आप मूर्ख पद्धति के कुछ श्लोक तथा विद्वत्पद्धति के कुछ श्लोकों का अध्ययन करेंगे। भर्तृहरि की कविता हमारे व्यावहारिक पक्षों से अपने कथ्य का सशक्त सम्प्रेषण करती है। उन्होंने अनेक ऐसे तथ्य उपस्थापित किये हैं जिससे उनका कथ्य स्वयमेव पाठक के समक्ष अपने रहस्य का उद्‌घाटन कर देता है। भर्तृहरि कहते हैं कि प्रचण्ड आग भी जल से बुझाई जा सकती है। छाते से प्रचण्ड धूप का भी वारण हो सकता है। अंकुश से मतवाला हाथी भी वश में किया जा सकता है। मन्त्र प्रयोग से विष पर भी विजय पायी जा सकती है किन्तु मूर्ख को वश में करने की कोई दवा नहीं है। वे साहित्य और संगीत आदि से रहित व्यक्ति को पशु ही मानते हैं। जिनके पास विद्या नहीं है, तप और दान आदि नहीं है, ऐसे मनुष्य भी पशु ही हैं। उनका यह भी कहना है कि पर्वत और जंगलों में भटकना ठीक है किन्तु मूर्ख के साथ इन्द्र के भवन में भी रहना उचित नहीं है। विद्या की प्रशंसा करते हुये, उनका कहना है कि यह धन चोरी करने वाले को भी दृष्टिगत नहीं होता, अत्यधिक आनन्द की सृष्टि करता है, सतत दान देने से भी नष्ट नहीं होता। राजाओं को ललकारते हुये भर्तृहरि कहते हैं कि विद्वान् पण्डितों की अवमानना करना उचित नहीं है क्योंकि लक्ष्मी के बल से उन्हें कोई उसी तरह नहीं रोक सकता, जिस तरह मतवाले हाथी को मृणालतन्तु से रोक पाना सम्भव नहीं होता।

प्रस्तुत इकाई में आप नीतिशतक के 11-20 पद्यों का अध्ययन करेंगे।

16.2 काव्यांश की व्याख्या

16.2.1 मूर्ख की औषधि का अभाव

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।।11।।

प्रसंग – नीतिकार भर्तृहरि ने प्रस्तुत पद्य में कहा है कि सूर्य के आतप आदि का उपचार है किन्तु मूर्ख (अज्ञानी) मनुष्य का कोई उपचार नहीं है।

अन्वयः – हुतभुक् जलेन, सूर्यातपः छत्रेण, समदः नागेन्द्रः निशिताङ्कुशेन वारयितुं शक्यः गोगर्दभौ दण्डेन, व्याधिः भेषजसङ्ग्रहैः, विषं विविधैः मन्त्रप्रयोगैः (च वारयितुं शक्यते) सर्वस्य शास्त्रविहितम् औषधम् अस्ति। (किन्तु) मूर्खस्य औषधं नास्ति।

शब्दार्थ – हुतभुक् = अग्नि, जलेन = जल से, सूर्यातपः = सूर्य की तपन, छत्रेण = छाते से, समदः = मदमत्त, नागेन्द्रः = हाथी, निशिताङ्कुशेन = तीखे अंकुश से, वारयितुं शक्यः = वश में कर सकते हैं, गोगर्दभौ = सांड़ और गधे को, दण्डेन = डण्डे से, व्याधिः = रोग, भेषजसङ्ग्रहैः = औषधियों के समूह से, विषम् = विष (जहर), विविधैः मन्त्रप्रयोगैः = अनेक प्रकार के मन्त्र प्रयोगों से, सर्वस्य = सभी का, शास्त्रविहितम् = शास्त्रों के द्वारा विहित, औषधम् = उपचार, अस्ति = है, किन्तु, मूर्खस्य = अज्ञानी, औषधम् = उपचार, नास्ति = नहीं है।

सन्धि –

सूर्यातपः – सूर्य + आतपः (दीर्घ सन्धि)

नागेन्द्रः – नाग + इन्द्रः (गुण सन्धि)

निशिताङ्कुशेन — निशित + अङ्कुशेन (दीर्घ सन्धि)

व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैः — व्याधिः + भेषजसङ्ग्रहैः (विसर्ग सन्धि)

सङ्ग्रहैश्च — सङ्ग्रहैः + च (श्चुत्व सन्धि)

विविधैर्मन्त्रप्रयोगैः — विविधैः + मन्त्रप्रयोगैः (विसर्ग सन्धि)

प्रयोगैर्विषम् — प्रयोगैः + विषं (विसर्ग सन्धि)

सर्वस्यौषधम् — सर्वस्य + औषधम् (वृद्धि सन्धि)

नास्त्यौषधम् — नास्ति + औषधम् (यण् सन्धि)

समास —

हुतभुक् — हुतं भुनक्तीति हुतभुक् (कर्मधारय समास)

सूर्यातपः — सूर्यस्य आतपः (षष्ठी तत्पुरुष समास)

नागेन्द्रः — नागानाम् इन्द्रः (षष्ठी तत्पुरुष समास)

निशिताङ्कुशेन — निशितः अङ्कुशः निशिताङ्कुशः (कर्मधारय समास) तेन

गोगर्दभौ — गौश्च गर्दभश्च (द्वन्द्व समास)

भेषजसङ्ग्रहैः — भेषजानां संग्रहः भेषजसंग्रहः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तैः

मन्त्रप्रयोगैः — मन्त्राणां प्रयोगः मन्त्रप्रयोगः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तैः

शास्त्रविहितम् — शास्त्रेषु विहितं (सप्तमी तत्पुरुष समास)

अनुवाद — अग्नि को जल से, सूर्य की तपन को छाते से, मदमत्त हाथी को तीखे अंकुश से, सांड़ और गधे को डण्डे से वश में कर सकते हैं। रोग का औषधियों के समूह से, जहर का अनेक प्रकार के मन्त्र प्रयोगों से उपचार किया जा सकता है। सभी का शास्त्रों के अनुसार विहित उपचार है परन्तु मूर्ख (अज्ञानी) मनुष्य का कोई उपचार नहीं है।

छन्द — शार्दूलविक्रीडित।

लक्षणम् — पूर्ववत्।

16.2.2 साहित्य और संगीत आदि की प्रशंसा

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनस्साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन् अपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।12।।

प्रसंग — भर्तृहरि ने प्रस्तुत श्लोक में साहित्य, संगीत आदि के महत्त्व को बताते हुये उससे रहित मनुष्य को साक्षात् पशु की संज्ञा दी है।

अन्वयः — साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः (मानवः) साक्षात् पुच्छविषाणहीनः पशुः (भवति) (सः) तृणं न खादन् अपि जीवमानः (वर्तते इति) तत् पशूनां परमं भागधेयं भवति।

शब्दार्थ — साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः = साहित्य, संगीत आदि कलाओं से अनभिज्ञ मनुष्य, साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप से ही, पुच्छविषाणहीनः = पूंछ और सींग के बिना, पशुः = जानवर, (भवति = होते हैं), (सः = वह), तृणम् = भूसा इत्यादि, न खादन् अपि = न खाते हुये भी, जीवमानः = जीवित रहता है, तत् = वह, पशूनाम् = पशुओं के लिए, परमम् = अत्यधिक, भागधेयम् = सौभाग्य की बात है।

सन्धि –

जीवमानस्तत् – जीवमानः + तत् (विसर्ग सन्धि)

समास –

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः – साहित्यसङ्गीतयोः कलाः साहित्यसङ्गीतकलाः (षष्ठी तत्पुरुष समास), साहित्यसङ्गीतकलाभिः विहीनः (तृतीया तत्पुरुष समास)

पुच्छविषाणहीनः – पुच्छश्च विषाणौ च पुच्छविषाणाः (द्वन्द्व समास) तैः हीनः (तृतीया तत्पुरुष समास)

अनुवाद – साहित्य, संगीत आदि मन को आनन्द देने वाली कलाओं से अनभिज्ञ मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से ही पूंछ और सींग के बिना जानवर होते हैं। वह भूसा इत्यादि न खाते हुये भी जीवित रहता है, यह पशुओं के लिए अत्यधिक सौभाग्य की बात है। अर्थात् वह मनुष्य पशुओं का चारा खाये बिना ही पशुओं के समान जीवन व्यतीत कर रहें हैं जिससे भाग्यवश पशुओं का चारा बच रहा है।

छन्द – उपजाति।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

16.2.3 विद्या आदि का महत्त्व

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।13।।

प्रसंग – इस पद्य में विद्या आदि से रहित मनुष्य को पशु के समान प्रतिपादित किया गया है।

अन्वयः – येषां विद्या न, तपः न, दानं न, ज्ञानं न, शीलं न, गुणः न, धर्मः न (अस्ति) ते भुवि मर्त्यलोके भारभूताः (सन्तः) मनुष्यरूपेण (विद्यमानाः) मृगाः (इव) चरन्ति।

शब्दार्थ – येषाम् = जिस मनुष्य के (पास), विद्या न = व्याकरण साहित्यादि शास्त्रों का ज्ञान नहीं है, तपः न = तपस्या नहीं है, दानं न = दान नहीं है, ज्ञानं न = विवेक नहीं है, शीलं न = शीलवान् नहीं है, गुणः न = दयादाक्षिण्यादि गुण नहीं है, धर्मः न = शास्त्रों में वर्णित धर्म नहीं है, ते = वे मनुष्य, भुवि = धरती पर, मर्त्यलोके = मृत्युलोक में (इस मनुष्य लोक में), भारभूताः = भार के रूप में, मनुष्यरूपेण = मानव के रूप में, मृगाः = पशु (के समान), चरन्ति = भ्रमण करते हैं।

सन्धि –

मृगाश्चरन्ति – मृगाः + चरन्ति (श्चुत्व सन्धि)

समास –

मर्त्यलोके – मर्त्यानां लोकः मर्त्यलोकः (षष्ठी तत्पुरुष समास)तस्मिन्

मनुष्यरूपेण – मनुष्याणां रूपं मनुष्यरूपम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)

अनुवाद – जिस मानव में व्याकरण साहित्यादि शास्त्रों का ज्ञान नहीं है, तप आदि नहीं है, दान नहीं है, विवेक नहीं है, सदाचार नहीं है, दयादाक्षिण्यादि गुण नहीं है, शास्त्रों में वर्णित धर्म नहीं है, वे मनुष्य इस धरा पर (मृत्युलोक में) भार हैं एवं मानव के रूप में पशु के समान भ्रमण करते हैं।

छन्द – उपजाति।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

16.2.4 मूर्ख संसर्ग का निषेध

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि।।14।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य के माध्यम से कवि ने पर्वत और दुर्गों में भटकने को श्रेष्ठ माना है किन्तु इन्द्र के भवन में भी मूर्खों के सम्पर्क का निषेध किया है।

अन्वयः – वनचरैः सह पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वरं (परन्तु) सुरेन्द्रभवनेषु अपि मूर्खजनसम्पर्कः न (वरम्)।

शब्दार्थ – वनचरैः = वनों में भ्रमण करने वाले जंगली भील आदि के, सह = साथ, पर्वतदुर्गेषु = पहाड़ों के विकट स्थानों में, भ्रान्तम् = भ्रमण, वरम् = सही है, सुरेन्द्रभवनेषु अपि = देवराज इन्द्र के महलों में भी, मूर्खजनसम्पर्कः = अज्ञानी व्यक्ति से व्यवहार, न = नहीं।

सन्धि –

सुरेन्द्रभवनेष्वपि – सुरेन्द्रभवनेषु + अपि (यण् सन्धि)

समास –

पर्वतदुर्गेषु – पर्वताः दुर्गाणि च पर्वतदुर्गाणि (द्वन्द्व समास) तेषु

वनचरैः – वने चरन्तीति वनचराः (सप्तमी तत्पुरुष समास) तैः

मूर्खजनसम्पर्कः – मूर्खः च असौ जनः च मूर्खजनः (कर्मधारय समास), मूर्खजनानां सम्पर्कः (षष्ठी तत्पुरुष समास)

सुरेन्द्रभवनेषु – सुराणाम् इन्द्रः सुरेन्द्रः (षष्ठी तत्पुरुष समास) सुरेन्द्रस्य भवनानि सुरेन्द्रभवनानि (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेषु

अनुवाद – वनों में भ्रमण करने वाले जंगली भील आदि के साथ पहाड़ों के विकट स्थानों में भ्रमण करना सही है किन्तु देवराज इन्द्र के महलों में भी मूर्ख व्यक्ति का साथ मंगलकारी नहीं है।

छन्द – अनुष्टुप्।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

16.2.5 विद्वानों के सम्मान का प्रस्ताव

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयो ह्यर्थं विनापीश्वराः
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः।।15।।

प्रसंग – नीतिशतकम् के प्रथम चौदह श्लोकों में मूर्खों के लक्षण का प्रतिपादन किया गया है। अतः उन्हें मूर्ख पद्धति की संज्ञा दी गई है। प्रस्तुत पद्य से विद्वानों के लक्षण का प्रतिपादन किया गया है अतः यह विद्वत्पद्धति का प्रथम पद्य है। इसमें जिस राजा के राज्य में विद्वान् दरिद्रता का अनुभव करते हैं उस राजा की निन्दा की गई है।

अन्वयः – शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमाः विख्याताः कवयः यस्य प्रभोः विषये निर्धनाः वसन्ति तत् वसुधाधिपस्य जाड्यं हि। कवयः अर्थं विना अपि ईश्वराः (भवन्ति) हि कुपरीक्षकाः कुत्स्याः स्युः यैः मणयः अर्घतः पातिताः।

शब्दार्थ – शास्त्र = न्याय और व्याकरणादि शास्त्रों से, उपस्कृत = परिनिष्ठ, शब्द = शब्दों से, सुन्दरगिरः = मधुर वाणी वाले, शिष्य = छात्रों को, प्रदेय = प्रदान करने योग्य, आगमाः = शास्त्रों के रहस्य वाले, विख्याताः = सुप्रसिद्ध, कवयः = ज्ञानी लोग, यस्य प्रभोः = जिस राजा के, विषये = देश में, निर्धनाः = निर्धन होकर, वसन्ति = निवास करते हैं, तत् = वह, वसुधाधिपस्य = भूपति की, जाड्यं हि = अज्ञानी ही है, कवयः = ज्ञानी लोग तो, अर्थम् = धन के, विना अपि = रहित भी, ईश्वराः = योग्य हैं, हि = क्योंकि, कुपरीक्षकाः = उचित परीक्षण न करने वाले, कुत्स्याः स्युः = निन्दा योग्य हैं, यैः = जिनके द्वारा, मणयः = बहुमूल्य रत्न, अर्घतः = मूल्य से, पातिताः = गिराये गये हैं।

सन्धि –

वसुधाधिपस्य	– वसुधा + अधिपस्य (दीर्घ सन्धि)

समास –

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः	– शास्त्रैः उपस्कृताः (तृतीया तत्पुरुष समास) शास्त्रोपस्कृताः, शास्त्रोपस्कृतैः शब्दैः सुन्दरा गीः येषां (बहुव्रीहिः समास) ते
शिष्यप्रदेयागमाः	– शिष्येभ्यः प्रदेयाः (चतुर्थी तत्पुरुष समास) शिष्यप्रदेयाः, शिष्यप्रदेयाः आगमाः येषां (बहुव्रीहि समास) ते
निर्धनाः	– निर्गतं धनं येभ्यः ते (बहुव्रीहि समास)
वसुधाधिपस्य	– वसुधायाः अधिपः (षष्ठी तत्पुरुष समास) वसुधाधिपः तस्य
कुपरीक्षकाः	– कुत्सिताः परीक्षकाः (कर्मधारय समास)

अनुवाद – न्याय और व्याकरणादि शास्त्रों से परिनिष्ठ शब्दों से मधुर वाणी वाले तथा छात्रों को प्रदान करने योग्य शास्त्रों के रहस्य वाले सुप्रसिद्ध ज्ञानी लोग यदि किसी राजा

के देश में निर्धन होकर निवास करते हैं तो वह राजा ही अज्ञानी है। ज्ञानी लोग तो धन से रहित भी सम्पन्न ही हैं। क्योंकि रत्न का उचित परीक्षण न करने वाले परीक्षक ही निन्दा योग्य हैं जिनके द्वारा बहुमूल्य रत्न मूल्य से गिराये गये हैं, न कि वह रत्न।

छन्द – शार्दूलविक्रीडित।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

16.2.6 विद्या का महत्त्व

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-
प्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते।।16।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में विद्या के महत्त्व को बताते हुये विद्वानों के प्रति राजाओं को स्पर्धा भाव त्यागने की सलाह दी गई है।

अन्वयः – हे नृपाः! यत् हर्तुः गोचरं न याति, सर्वदा किम् अपि शं पुष्णाति, अर्थिभ्यः अनिशं प्रतिपाद्यमानम् अपि परां वृद्धिं प्राप्नोति कल्पान्तेषु अपि निधनं न प्रयाति (एतादृशं) विद्याख्यम् अन्तर्धनं येषाम् अस्ति तान् प्रति मानम् उज्झत। तैः सह कः स्पर्धते ?

शब्दार्थ – हे नृपाः! = हे राजागण!, यत् = जो धन, हर्तुः = चोरी करने वाले के, गोचरं न याति = दृष्टिगत नहीं होने वाले, सर्वदा = सदा, किम् अपि = अनिर्वचनीय, शम् = आनन्द की, पुष्णाति = वृद्धि करता है, अर्थिभ्यः = मांगने वालों के लिए, अनिशम् = लगातार, प्रतिपाद्यमानम् अपि = दिया जाता हुआ भी, पराम् = अत्यधिक, वृद्धिम् = अधिकता को, प्राप्नोति = प्राप्त करता है, कल्पान्तेषु अपि = प्रलय-काल में भी, निधनम् = विनाश को, न प्रयाति = प्राप्त नहीं होता, विद्याख्यम् = वह विद्या नामक, अन्तर्धनम् = छिपा हुआ धन, येषाम् = जिन ज्ञानियों का, अस्ति = है, तान् प्रति = उनके लिए, मानम् = गर्व करना, उज्झत = त्याग दो, तैः सह = उन ज्ञानियों के साथ, कः = कौन मानव, स्पर्धते = प्रतिस्पर्धा कर सकता है।

सन्धि –

हर्तुर्याति – हर्तुः + याति (विसर्ग सन्धि)

सर्वदापि – सर्वदा + अपि (दीर्घ सन्धि)

अप्यर्थिभ्यः – अपि + अर्थिभ्यः (यण् सन्धि)

कल्पान्तेष्वपि– कल्पान्तेषु + अपि (यण् सन्धि)

विद्याख्यम् – विद्या + आख्यम् (दीर्घ सन्धि)

कस्तैः – कः + तैः (विसर्ग सन्धि)

समास –

कल्पान्तेषु – कल्पानाम् अन्तः कल्पान्तः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेषु

विद्याख्यम् – विद्या आख्या यस्य तत् (बहुव्रीहि समास)

अनुवाद – हे राजागण! जो धन चोरी करने वाले चोर को भी दृष्टिगत नहीं होता है, जो सदा अनिर्वचनीय आनन्द की वृद्धि करता है, जो मांगने वालों के लिए लगातार दिया जाता हुआ भी अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त करता रहता है तथा जो प्रलय-काल में भी विनाश को प्राप्त नहीं होता है, ऐसा वह विद्या नामक छिपा हुआ धन, जिन ज्ञानियों का है, उनके समक्ष गर्व करना त्याग दो, उन ज्ञानियों के साथ भला कौन मानव प्रतिस्पर्धा कर सकता है?

छन्द – शार्दूलविक्रीडित।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

16.2.7 विद्वानों का संरक्षण

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमंस्थाः
तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम्।।17।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में नीतिकार ने विद्वानों के संरक्षण एवं आदर करने की शिक्षा राजाओं को दी है।

अन्वयः – अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मा अवमंस्थाः, लक्ष्मीः लघु तृणम् इव तान् न एव संरुणद्धि, बिसतन्तुः अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां वारणानां वारणं न भवति।

शब्दार्थ – अधिगतपरमार्थान् = परमार्थ को अधिग्रहीत करने वाले, पण्डितान् = ज्ञानियों का, मा अवमंस्थाः = अनादर मत करो, लक्ष्मीः = सम्पत्ति, लघु = तुच्छ, तृणम् इव = तिनके के समान, तान् = उन्हें, न एव = नहीं, संरुणद्धि = रोक सकता, बिसतन्तुः = कमल का रेशा, अभिनव = नवीन, मदलेखा = मदरेखा से, श्याम = सांवले, गण्डस्थलानाम् = कपोलों वाले, वारणानां = हाथियों को, वारणम् = रोकने वाला, न भवति = नहीं होता।

सन्धि –

मावमंस्थाः	–	मा + अवमंस्थाः (दीर्घ सन्धि)
अवमंस्थास्तृणम्	–	अवमंस्थाः + तृणम् (विसर्ग सन्धि)
लक्ष्मीर्न	–	लक्ष्मीः + न (विसर्ग सन्धि)
नैव	–	न + एव (वृद्धि सन्धि)
तन्तुर्वारणम्	–	तन्तुः + वारणम् (विसर्ग सन्धि)

समास –

अधिगतपरमार्थान्	–	अधिगतः परमार्थः यैः ते अधिगतपरमार्थाः (बहुव्रीहि समास) तान्
बिसतन्तुः	–	बिसस्य तन्तुः (षष्ठी तत्पुरुष समास)

अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानाम् – अभिनवा चैव मदलेखा च अभिनवमदलेखा (कर्मधारय समास) अभिनवमदलेखया श्यामानि अभिनवमदलेखाश्यामानि (तृतीया तत्पुरुष समास) अभिनवमदलेखाश्यामानि गण्डस्थलानि येषां ते, अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलाः, तेषाम् (बहुव्रीहि समास)

अनुवाद – (हे राजन्) परमार्थ करने वाले ज्ञानियों का अनादर मत करो, उनके लिये धन तुच्छ तिनके के समान है, उससे उन्हें नहीं रोका जा सकता। ठीक वैसे ही जैसे कमल का रेशा नवीन मदरेखा से मदमत्त सांवले कपोलों वाले हाथियों को रोक नहीं सकता अर्थात् हे राजन् शास्त्रों के ज्ञान से परोपकार में लीन विद्वानों का अपमान मत करो क्योंकि उनके लिये धन एक तुच्छ तिनके के समान है। अतः उन्हें उससे वश में नहीं किया जा सकता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नवीन मदरेखा से काले कपोलों वाले मदमत्त हाथी को कमलनाल से बाँधकर नहीं रोका जा सकता।

छन्द – मालिनी।

लक्षणम् – ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में नगण, नगण, मगण, यगण, यगण होते हैं तथा आठवें और अन्त वर्ण में विराम होता है।

16.2.8 गुणों की दुरपवारता

अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः।।18।।

प्रसंग – इस पद्य में सहज गुण के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। कवि ने कहा है कि सहज गुण को विधाता भी दूर नहीं कर सकता।

अन्वयः – नितरां कुपितः विधाता हंसस्य अम्भोजिनीवनविहारविलासम् एव हन्ति। अस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां वैदग्ध्यकीर्तिम् अपहर्तुं तु असौ न समर्थः।

शब्दार्थ – नितराम् = अत्यन्त, कुपितः = क्रोधित होने पर भी, विधाता = ब्रह्मा, हंसस्य = हंस के, अम्भोजिनीवनविहारविलासम् = कमलिनी वन में क्रीड़ा करने के आनन्द को ही, हन्ति = समाप्त कर सकता है, अस्य = इस (राजहंस की), दुग्धजलभेदविधौ = दुग्ध और जल को पृथक् करने की विधि में, प्रसिद्धाम् = विख्यात, वैदग्ध्यकीर्तिम् = चातुर्य के यश को, अपहर्तुम् = अपहरण करने में, तु = किन्तु, असौ = ब्रह्माजी, न समर्थः = असमर्थ हैं।

सन्धि –

त्वस्य – तु + अस्य (यण् सन्धि)

समास –

अम्भोजिनीवनविहारविलासम् – अम्भोजिनीनां वनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास) अम्भोजिनीवनम्, अम्भोजिनीवने विहारः अम्भोजिनीवनविहारः (सप्तमी तत्पुरुष समास), अम्भोजिनीवनविहारस्य विलासः अम्भोजिनीवनविहारविलासः, (षष्ठी तत्पुरुष समास) तम्

दुग्धजलभेदविधौ – दुग्धं च जलं च (द्वन्द्वसमास) दुग्धजले दुग्धजलयोः भेदः (षष्ठी तत्पुरुष समास) दुग्धजलभेदः, दुग्धजलभेदस्य विधिः (षष्ठी तत्पुरुष समास) दुग्धजलभेदविधिः तस्मिन्

वैदग्ध्यकीर्तिम् – वैदग्ध्येन कीर्तिः (तृतीया तत्पुरुष समास) वैदग्ध्यकीर्तिः, ताम्

अनुवाद – यदि ब्रह्मा जी हंस पर अत्यन्त क्रोधित भी हो जायें तो अधिक से अधिक उसके कमलिनी वन में क्रीड़ा करने के आनन्द में ही बाधा उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु दुग्ध और जल को पृथक् करने की विधि में हंस के चातुर्य के विख्यात यश को छीन पाने में तो ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं। (इसी प्रकार यदि राजा क्रोधित हो तो अधिक से अधिक विद्वान् की सम्पत्ति को ही छीन सकता है, परन्तु उसके वैदुष्य को नहीं छीन सकता।)

छन्द – वसन्ततिलका।

लक्षणम् – पूर्ववत्।

16.2.9 सर्वोत्तम आभूषण

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।19।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में केयूर आदि आभूषणों की अपेक्षा विद्या को सर्वश्रेष्ठ आभूषण बताया गया है।

अन्वयः – केयूराणि पुरुषं न भूषयन्ति, चन्द्रोज्ज्वलाः हाराः (पुरुषं) न (भूषयन्ति), स्नानं (पुरुषं) न (भूषयति), विलेपनं (पुरुषं) न (भूषयति), कुसुमं (पुरुषं) न (भूषयति), अलङ्कृताः मूर्धजाः (पुरुषं) न (भूषयन्ति), या संस्कृता धार्यते (सा) एका वाणी पुरुषं समलङ्करोति। भूषणानि खलु क्षीयन्ते। वाग्भूषणं सततं भूषणं (भवति)।

शब्दार्थ – केयूराणि = बाजूबन्द, पुरुषम् = मनुष्य को, न भूषयन्ति = शोभित नहीं करते, चन्द्रोज्ज्वलाः = चन्द्रमा की तरह चमकते हुए, हाराः = हार, न = नहीं, स्नानम् = स्नान, न विलेपनम् = न तो सुगन्धित तेल चन्दन आदि, न कुसुमम् = न तो पुष्पादि, न अलङ्कृताः = न सजाये हुए, मूर्धजाः = बाल, न = नहीं, या = जो, संस्कृता = सुसंस्कृत, धार्यते = मुख में विराजित की जाती है, एका = एकमात्र, वाणी = वाणी ही, पुरुषम् = मनुष्य विशेष को, समलङ्करोति = सुशोभित करती है, भूषणानि = केयूर आदि आभूषण, खलु क्षीयन्ते = अवश्य ही पतन को प्राप्त हो जाते हैं, वाग्भूषणम् = वाणी रूपी आभूषण, सततम् = सदा, भूषणम् = शोभा, भवति = होती है।

सन्धि –

चन्द्रोज्ज्वलाः	–	चन्द्र + उज्ज्वलाः (गुण सन्धि)
नालङ्कृता	–	न + अलङ्कृताः (दीर्घ सन्धि)
वाण्येका	–	वाणी + एका (यण् सन्धि)
वाग्भूषणम्	–	वाक् + भूषणम् (जश्त्व सन्धि)

समास –

चन्द्रोज्ज्वलाः	–	चन्द्रवत् उज्ज्वलाः (कर्मधारय समास)
वाग्भूषणम्	–	वाणी एव भूषणं (कर्मधारय समास)

अनुवाद – बाजूबन्द मनुष्य को शोभित नहीं करते, न ही चन्द्रमा की तरह चमकते हुए हार, न ही स्नान, न ही सुगन्धित तेल चन्दन आदि का लेप, न ही पुष्पादि, न ही सजाये हुए बाल

शरीर को सुन्दर बनाते हैं। मनुष्य के मुख में विराजमान सुसंस्कृत वाणी ही एकमात्र उस मनुष्य विशेष को सुशोभित करती है। अन्य केयूर आदि आभूषण अवश्य ही पतन को प्राप्त हो जाते हैं परन्तु वाणी रूपी आभूषण सदा शोभित रहते हैं।

छन्द — शार्दूलविक्रीडित।

लक्षणम् — पूर्ववत्।

16.2.10 सर्वोत्तम धन

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवता
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः।।20।।

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में विद्या के महत्त्व को बताते हुये विद्या से रहित व्यक्ति को पशु कहा गया है। विद्वान् की पूजा सर्वत्र होती है किन्तु राजा केवल अपने राज्य में ही पूजा जाता है।

अन्वयः — विद्या नाम नरस्य अधिकं रूपं, प्रच्छन्नगुप्तं धनं, विद्या भोगकरी यशः सुखकरी, विद्या गुरूणां गुरुः, विद्या विदेशगमने बन्धुजनः, विद्या परं दैवता, विद्या राजसु पूज्यते धनं न हि (पूज्यते) विद्याविहीनः पशुः।

शब्दार्थ — विद्या नाम = विद्या नाम से प्रसिद्ध, नरस्य = मनुष्य का, अधिकम् = विशेष, रूपम् = सौन्दर्य, प्रच्छन्नगुप्तम् = छिपा हुआ, धनम् = सम्पत्ति, विद्या = विद्या, भोगकरी = भोगने योग्य पदार्थों को देने वाली, यशः सुखकरी = कीर्ति और आनन्द को देने वाली, विद्या = शिक्षा, गुरूणाम् = गुरुजनों की (भी), गुरुः = शिक्षक, विदेशगमने = परदेश जाने पर, बन्धुजनः = भाई-बन्धुओं की तरह (सहायता करने वाली), परम् = अत्यन्त, दैवतम् = देवता, राजसु = नृपों में, पूज्यते = पूजित होती है, धनम् = सम्पत्ति, न हि (पूज्यते) = नहीं पूजित (होता है), विद्याविहीनः = ज्ञान से रहित, पशुः = जानवर।

समास —

प्रच्छन्नगुप्तम् — प्रच्छन्नं च तत् गुप्तं च (कर्मधारय समास)

भोगकरी — भोगं करोति इति भोगकरी (नित्यसमास)

यशःसुखकरी — यशः च सुखं च यशः सुख, यशसुखं करोतीति — यशः सुखकरी (नित्यसमास)

विदेशगमने — विदेशेषु गमनं विदेशगमनं (सप्तमी तत्पुरुष समास) तस्मिन्

बन्धुजनः — बन्धुः च असौ जनः च बन्धुजनः (कर्मधारय समास)

विद्याविहीनः — विद्यया विहीनः, विद्याविहीनः (तृतीया तत्पुरुष समास)

अनुवाद — व्यक्ति का अनुपम स्वरूप, अत्यन्त गुप्त संपत्ति उसका ज्ञान ही है। विद्या ही भोग्य पदार्थों, कीर्ति तथा सुख को प्रदान करने वाली है। विद्या गुरुजनों की भी गुरु है। विदेश में जाने पर विद्या स्वजनों की भाँति सहायता करती है। वही सबसे बड़ा ईश्वर है। राजा लोग विद्या को ही आदर देते हैं, न कि धन को। अतः विद्या विहीन व्यक्ति पशु समान ही है।

छन्द — शार्दूलविक्रीडित।

लक्षणम् — पूर्ववत्।

बोध प्रश्न

1. साहित्य, संगीत आदि से रहित व्यक्ति कैसा होता है ?
2. जिसके पास विद्या नहीं है, वह मनुष्य क्या है ?
3. कौन सा धन कभी नष्ट नहीं होता है ?
4. राजा लोग किसको आदर देते हैं ?
5. कौन सा आभूषण सदा शोभित रहता है ?

अभ्यास प्रश्न

1. 'शक्यो वारयितुं....... इत्यादि पद्य की व्याख्या कीजिये।
2. 'मर्त्यलोके' शब्द में कौन सा समास है ?
3. 'अम्भोजिनीवनविहार' इत्यादि श्लोक का आशय क्या है ?
4. राजा लोग किसको आदर देते हैं ?
5. 'वाग्भूषणं भूषणं' की व्याख्या कीजिये।

16.3 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि साहित्य, संगीत और कला से रहित मनुष्य साक्षात् पशु है। वह भूसा नहीं खाता, यह पशुओं के सौभाग्य की बात है। भर्तृहरि जीवन में विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण और धर्म के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। उन्हें मूर्ख के साथ इन्द्र की सभा में भी रहना उचित नहीं लगता है। राजाओं को उन्होंने शिक्षा दी है कि जिनकी वाणी शास्त्रों से उपस्कृत है तथा शिष्यों को देने योग्य विद्या है, ऐसे विद्वान् जिस राजा के राज्य में निर्धन होते हैं, वह राजा ही अज्ञानी है। विद्या कभी चोर को दिखाई नहीं देती, प्रलय काल में भी नष्ट नहीं होती, वह ज्ञानियों का छिपा हुआ धन है, इसलिये राजाओं को विद्वानों के सामने गर्व नहीं करना चाहिये। उन्हें विद्वानों का अपमान भी नहीं करना चाहिये। विद्वज्जन लक्ष्मी के वश में नहीं होते, लक्ष्मी एक तिनका है तथा तिनके से मतवाले हाथी को नहीं रोका जा सकता। विद्वत्ता ऐसा गुण है कि ब्रह्मा भी उसे विद्वान् से दूर नहीं कर सकता। भर्तृहरि कहते हैं कि मनुष्य बाजूबन्द आदि आभूषणों से सुशोभित नहीं होता, संस्कार युक्त वाणी ही सबसे बड़ा आभूषण है। विद्या ही मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है, वही उन्हें सुख और यश प्रदान करती है। वह गुरूजनों की भी गुरू है। राजागण विद्या को ही सम्मान देते हैं, इसीलिये विद्या से रहित व्यक्ति पशु है।

16.4 शब्दावली

हुतभुक्	=	अग्नि
भेषजसङ्ग्रहैः	=	औषधियों के समूह से
गोगर्दभौ	=	सांड़ और गधे को
पुच्छविषाणहीनः	=	पूंछ और सींग के बिना
भागधेयम्	=	सौभाग्य की बात है
भुवि	=	धरती पर

भारभूताः	=	भार के रूप में
सुरेन्द्रभवनेषु अपि	=	देवराज इन्द्र के महलों में भी
उपस्कृत	=	परिनिष्ठ
जाड्यं हि	=	अज्ञानी ही है
कुत्स्याः स्युः	=	निन्दा योग्य हैं
अर्घतः	=	मूल्य से
गोचरं न याति	=	दृष्टिगत नहीं होने वाले
अनिशम्	=	लगातार
कल्पान्तेषु अपि	=	प्रलय-काल में भी
बिसतन्तुः	=	कमल का रेशा
वारणम्	=	रोकने वाला
संरुणद्धि	=	रोक सकता
वैदग्ध्यकीर्तिम्	=	चातुर्य के यश को
हन्ति	=	समाप्त कर सकता है
मूर्धजाः	=	बाल
विलेपनम्	=	सुगन्धित तेल चन्दन आदि
प्रच्छन्नगुप्तम्	=	छिपा हुआ

16.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भर्तृहरिशतकत्रयम्, सम्पादकः – पु. गोपीनाथ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2010।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी, 2001
3. वृत्तरत्नाकरः, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011।
4. अमरकोश, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड़, दिल्ली, 2011।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009।

16.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

(1) पशुतुल्य। (2) मनुष्य के रूप में पशु।

(3) विद्यारूपी धन। (4) विद्या को।

(5) वाणी रूपी आभूषण।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें

इकाई 17 भर्तृहरि की समाज पर टिप्पणियाँ (नीतिशतकम् के आधार पर)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 मुख्य विषय की विवेचना

- 17.2.1 मूर्ख पद्धति का वर्णन
- 17.2.2 विद्वत्पद्धति
- 17.2.3 विद्वानों का संरक्षण
- 17.2.4 सर्वोतम आभूषण
- 17.2.5 सर्वोतम धन
- 17.2.6 अर्थ पद्धति
- 17.2.7 दुर्जन एवं सुजन पद्धति
- 17.2.8 सुजन परोपकार पद्धति
- 17.2.9 धैर्य–दैव एवं कर्म पद्धति

17.3 सारांश

17.4 शब्दावली

17.5 उपयोगी पुस्तकें

17.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- भर्तृहरि के द्वारा प्रतिपादित मूर्खता के लक्षणों को समझ सकेंगे।
- मूर्खता की कोई औषधि नही है, यह जान सकेंगे।
- जीवन में साहित्य, संगीत और कला के महत्त्व को जान सकेंगे।
- विद्या और तप आदि से रहित मनुष्य की पशुता को जान सकेंगे।
- विद्वानों के महत्त्व को जान सकेंगे।
- विद्या ही सबसे बड़ा धन है, यह जान सकेंगे।
- नीतिशतकम के आधार पर विद्वत्पद्धति, दुर्जन एवं सुजन पद्धति, धैर्य–दैव एवं कर्म पद्धति को जान सकेंगे।
- भर्तृहरि के अनुसार सर्वोतम आभूषण क्या है, समझ सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

भर्तृहरि के तीन प्रसिद्ध शतकों जिन्हें कि शतकत्रय कहा जाता है 'नीतिशतकम् ' उनमें से एक है। इसमें नीति सम्बन्धी (100) सौ श्लोक रखे गये हैं।

महाकवि भर्तृहरि ने अपने अनुभवों के आधार पर तथा लोक व्यवहार के सम्बन्ध में नीति सम्बन्धी श्लोकों का संग्रह किया है। कुछ श्लोको के माध्यम से कवि ने लोभ, ईर्ष्या, मूर्खता, अहंकार आदि की निंदा की है। तो कुछ श्लोकों के माध्यम से कवि ने मनुष्य मात्र के उत्थान हेतु विद्या, सज्जनता, उदारता, स्वाभिमान, सहनशीलता आदि नैतिक मूल्यों से युक्त गुणों विवेचना की है। नीतिशतक की मौलिक विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन नीतिशतक भारतीय नीतिशास्त्र के आलोक में सर्वथा उज्ज्वल है। इसमें मानवीय जीवन के प्रत्येक पक्ष का स्वतंत्र पद्यों में सुविचारित तथ्यों का विश्लेषण कर जीवन में उतारने पर बल दिया गया है। इस लघुकाय नीतिशतक में 'गागर में सागर' की तरह प्रायः सभी विषयों का समावेश किया गया है। मुख्य रूप से – सन्तोष धारण करने का महत्व, विद्या की भरपूर प्रशंसा, चापलूसों का स्वभाव, विवेकरहित (अविवेकी) पुरुष का पतन, धन–भाग्य की स्थिति, महापुरुष एवं सत्संगति महत्त्व, आत्मगौरव की प्रशंसा, सत्पुरुषों का कठिन असिधार व्रत, शील स्वभाव का दिग्दर्शन एवं मानव कल्याण के सर्वसमर्थित मार्ग आदि का प्रभावोत्पादक निर्देश दिया गया है। इतना ही नहीं इसमें यह भी कहा गया है कि स्वजनों पर उदारता, सेवकों पर दया, सज्जनों से प्रीति, विद्वानों के प्रति नम्रता और शत्रुओं के साथ वीरता का व्यवहार करने वाले लोगों पर ही संसार टिका हुआ है आदि।

मानव जीवन के प्रत्येक सत्य का भर्तृहरि ने नीतिशतक में प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। इस प्रकार नीतिशतक में भर्तृहरि द्वारा प्रदत्त नीति एवं उपदेश मानवमात्र के लिये कल्याणकारी है।

वस्तुतः नीतिशतक के श्लोक संस्कृत भाषा में ही नहीं अपितु सभी भारतीय भाषाओं में उद्धृत किये जाते हैं। संस्कृत विद्वान और टीकाकार ने नीतिशतकम् के श्लोकों को अध्ययन की सरलता के कारण निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है।

1. मूर्खपद्धति
2. विद्वत्पद्धति
3. मान– शौर्य– पद्धति
4. अर्थ पद्धति
5. दुर्जनपद्धति
6. सुजनपद्धति
7. परोपकारपद्धति
8. धैर्यपद्धति
9. देवपद्धति
10. कर्म पद्धति

17.2 मुख्य विषय की विवेचना

महाकवि भर्तृहरि का 'नीतिशतकम्' अनेक नैतिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाला उत्कृष्टतम् ग्रन्थ है। उसमें प्रतिपादित नैतिक सिद्धान्त किसी विशेष धर्म–जाति, सम्प्रदाय, समुदाय अथवा वर्ग आदि से सम्बन्धित नहीं हैं।

'नीतिशतक' में मनुष्य मात्र के लिए नीति कुशलता के उपदेश आदेश दिये गये हैं।नैतिक उपदेशों में यह बताया गया है कि इस कर्मभूमि में आकर मनुष्य की किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए।

अपने जीवन के विकास हेतु व्यक्ति को किन–किन गुणों का अपने जीवन में समन्वय करना चाहिए, अपनी जीवन शैली कैसी बनानी चाहिए ? इसप्रकार के अनेकों जीवनोपयोगी सिद्धांतों का प्रतिपादन भर्तृहरि जी ने अपने ग्रन्थ में किया है। 'नीतिशतक' की नीतियों का सम्बन्ध राजनीति से न होकर 'लोक व्यवहार मात्र से है।

अतः इस ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य विषय लोक व्यवहार कुशलता हैं। किसी राजनीति या किसी विशेष अर्थनीति से नहीं है।'नीतिशतक' का सम्पूर्ण विषय अत्यन्त गहन चिंतन एवं गंभीर सांसारिक अनुभव पर आधारित है।

धर्मात्माओं ने संसार से अनुभव प्राप्त कर मानव–मात्र के लिए सरल एवं सफल जीवन पद्धति का निर्माण किया है।

महाकवि भर्तृहरि ने सर्वप्रथम नीतिशतक में 'मूर्ख पद्धति' का वर्णन किया है।

17.2.1 मूर्ख पद्धति का वर्णन

भर्तृहरि एक महान संस्कृत कवि है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में 'भर्तृहरि' की पहचान अद्वितीय है। इनकी पहचान एक 'नीतिकार' के रूप में स्थापित है। भर्तृहरि के शतकत्रय उनमे भी विशेष रूप से 'नीतिशतक' आज के परिवेश में समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध है। भर्तृहरि ने 'नीतिशतक' के सौ श्लोकों मे विभिन्न श्लोकों में मूर्खों का वर्णन किया है। साथ ही मूर्खता– अल्पज्ञता निवारण एवं मूर्खो से बचने हेतु सूत्र भी बतायें है। जोकि निम्नवत है –

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति ॥

अल्पज्ञानी घमण्डी मनुष्य के स्वभाव का वर्णन करते हुए आचार्य भर्तृहरि कहते है बिल्कुल अनजान व्यक्ति को प्रसन्न करना तथा समझाना अत्यंत सरल बात है। इसी प्रकार विशिष्ट ज्ञानी मनुष्य को समझाना तथा सन्तुष्ट करना और भी अधिक सरल है किंतु थोड़े से ज्ञान के कारण अपने को विद्वान् तथा पण्डितराज समझने वाले दम्भी मनुष्य को संतुष्ट करना असम्भव कार्य है। स्वयं भगवान भी यदि उसे समझाने का प्रयत्न करें तो उनका भी प्रयत्न निष्फल रहेगा, अतः भर्तृहरि कहते है कि ऐसे मनुष्य को संतुष्ट करने तथा समझाने का प्रयत्न करना ही नहीं चाहिए।

प्रसह्यं मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्

समुद्रमपि सन्तरेत प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।

भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्

न तु प्रतिनिविष्टिमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ।।

भर्तृहरि इस श्लोक में बताना चाहते है कि मनुष्य असम्भव कार्य को भी करने में सक्षम हो सकता है किंतु मूर्ख एवं दुराग्रही ढीठ व्याक्ति को कभी किसी प्रकार भी संतुष्ट नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार मनुष्य यदि प्रयत्न करे तो मगरमच्छ जैसे हिंसक जीव की दाढ़ों में स्थित मणि को भी बाहर निकालने में सफल हो सकता है, इसी प्रकार ऊपर उठती हुई लहरों वाले समुद्र को भी पार कर सकता है और क्रोधित साँप को पुष्प की तरह अपने सिर पर भी धारण करने में सक्षम हो सकता है किन्तु दुराग्रही मूर्ख व्यक्ति को संतुष्ट करने में कोई भी सफल नहीं हो सकता। ऐसा व्यक्ति अपने हठ पर अड़ा रहता है तथा वह किसी की कोई बात सुनने को तैयार ही नहीं होता है, फिर किसी की बात मानने का तो प्रश्न ही नहीं होता। अतः ऐसे ढीठ मूर्ख व्यक्ति को संतुष्ट करना बिल्कुल भी सम्भव नहीं है।

लभेत् सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्शशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत ।।

भर्तृहरि का यह मानना है कि मनुष्य यदि प्रयत्न करे तो वह बालू (रेत) को दबाने से तेल निकाल सकता है, जल का भ्रम उत्पन्न करने वाले रेत के कणों में भी वह जल प्राप्त करके अपनी प्यास को बुझा सकता है तथा इसी प्रकार इधर–उधर घूमता हुआ भी वह खरगोश के सींग भी प्राप्त कर सकता है, इस प्रकार से असम्भव कार्य तो सम्भव हो सकते हैं किंतु दुराग्रही (ढीठ) मूर्ख व्यक्ति के मन को संतुष्ट करना कदापि सम्भव हो ही नहीं सकता। मूर्ख व्यक्ति अहंकार ग्रस्त होता है, अतः उससे अपनी बात मनवाना बिल्कुल सम्भव नहीं है।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेतुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यति ।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभि।।

प्रस्तुत श्लोक में भर्तृहरि बताना चाहते है कि मूर्खों को सज्जनों के मार्ग की ओर प्रेरित करना उसी प्रकार असंभव है जैसे कोमल कमलनाल के रेशों से मदमस्त हाथी को बाँधना असंभव है या जैसे शिरीष जैसे कोमल पुष्प से कठोर मणि को काटना सम्भव नहीं है या जैसे शहद की एक बूँद से विशाल एवं गम्भीर समुद्र के खारे जल को मीठा बनाना संभव नहीं। इस प्रकार मूर्ख मनुष्यों को अमृत जैसे मधुर तथा बहुमूल्य वचनों से भी सज्जन बनाने का प्रयास निष्फल ही होता है। मूर्ख मनुष्य दूसरे लोगों की बात सुनने को तैयार ही नहीं होते, अतः उनकी मूर्खता को दूर करने का प्रयत्न निष्फल ही रहता है।

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा, विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ।।

"मूखो की मूर्खता को छिपाने के लिए मौन धारण करना एक श्रेष्ठ आभूषण है" इस विषय को प्रस्तुत करते हुए भर्तृहरि कहते है ब्रह्म ने कृपा करके मूर्खों के लिए उनकी मूर्खता को छिपाने का अत्यंत हितकर साधन चुप रहना" बनाया है जो उनके ही अधीन है अर्थात् जो पूर्णतया उनके ही वश में है तथा इससे विद्वानों की सभा में उनकी शोभा भी बढ़ती है। इस प्रकार मौन रहने से मूर्खों की मूर्खता तो छिप ही जाती है साथ ही विद्वानों की सभा में यह उनका आभूषण बनकर उनकी शोभा को भी बढ़ाता है। चुप रहने से उनकी मूर्खता का भी पता नहीं चलता है।

यदा किञ्जिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।।

"थोड़ी सी जानकारी अहंकार को उत्पन्न करने वाली होती है तथा विद्वानों की संगति इस अहंकार की विनाशिका होती है" इस भाव को प्रस्तुत करते हुए– " भर्तृहरि कहते है कि विद्वानों की संगति से मनुष्य का अभिमान बिल्कुल नष्ट हो जाता है। थोड़ी सी जानकारी प्राप्त करके मनुष्य अभिमान से अंधा होने लगता है, वह अपने आपको सर्वज्ञ मानने लगता है, वह मदमस्त हाथी की तरह गर्वोन्मत्त हो जाता है किंतु विद्वानों की संगति प्राप्त करके वह शीघ्र ही अपने को मूर्ख अनुभव करने लगता है। वह समझ जाता है कि उसने तो अभी ज्ञान प्राप्त किया ही नहीं है, शास्त्रों का अध्ययन किया ही नहीं है। उसका अहंकार नष्ट होने लगता है और वह ज्ञान अर्जित करने के लिए प्रवृत हो जाता है। इस प्रकार विद्वानों की संगति कितनी हितकर है– यह तथ्य भी प्रस्तुत किया गया है और साथ ही अहंकारशून्यता ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है– यह भी बताया गया है।

कृमिकुलचितं लालाक्तिनं नं विगन्धि जुगुप्सितं
निरुपमरसप्रीत्या खादन्नरास्थिं निरामिषम् ।
सुरपतिमपि वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङकते
न ही गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् ।।

इस श्लोक में भर्तृहरि बताना चाहते है कि नींच व्यक्ति अपने द्वारा अपनाई हुई वस्तु की निस्सारता पर ध्यान नहीं देता।

प्राणी अपने स्वभाव के अनुसार वस्तु को प्राप्त करके उससे पूर्ण संतुष्टि प्राप्त कर लेता है। महान् प्राणी श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त किए बिना संतुष्ट नहीं होता के किंतु नीच प्राणी तुच्छ वस्तु से भी असीम सन्तोष प्राप्त कर लेता है। कुत्ते का उदाहरण देकर कवि इस भाव को प्रस्तुत करते हुए यहां बताते है कि कुत्ता कीड़ों से व्याप्त, लार से गीली, दुर्गन्धमय, घृणाजनक तथा माँसरहित हड्डी को चाटता रहता है, उससे उसे अत्यंत संतोष मिलता है। उस समय यदि स्वयं इन्द्र भी वहाँ उपस्थित हो जाएँ तो उसे लज्जा अनुभव नहीं होती। क्योंकि यह सत्य है कि नीच व्यक्ति को अपनी वस्तु तुच्छ होते हुए भी तुच्छ नहीं लगती। वह अपने द्वारा प्राप्त वस्तु को ही श्रेष्ठ समझता है और उसे नहीं छोड़ता (त्यागता) है। इसी प्रकार नीच व्यक्ति निन्दनीय कार्य करने से भी नहीं चूकता, घृणित कार्य करने में भी उसे लज्जा अनुभव (महसूस) नहीं होती।

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।
अधोऽधो गंगेय पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।।

अविवेकी लोगों का अधः पतन किस प्रकार होता है इसका वर्णन करते हुए कवि भर्तृहरि बताते हैं

सुरसरिता गंगा अपने तीव्र प्रवाह के साथ स्वर्ग लोक में बहती थी। अपनी तेज गति के गर्व से वह विवेक शून्य हो गई और धीरे–धीरे उसका अधःपतन होना आरम्भ हो गया। वह सर्वोच्च स्थान स्वर्ग से निम्नतम स्थान पाताल लोक में पहुँच गई क्योंकि विवेक शून्य लोग इसी प्रकार सैकड़ों प्रकार से पतन प्राप्त करते है। इस प्रकार भर्तृहरि मनुष्य मात्र को यह उपदेश देना चाहते है कि मनुष्य को विवेक से काम लेना चाहिए तथा अपनी उन्नति पर कभी गर्व नहीं करना चाहिए। विवेकशून्यता तथा दर्प मनुष्य की अवनति का मूल कारण होता है।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङकुशेन समदो दण्डेन गौगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ।।

"मूर्ख की मूर्खता को दूर करने का कोई उपाय नहीं है इस विषय का वर्णन करते हुए भर्तृहरि कहते है कि सभी परेशानियों का कुछ न कुछ इलाज (समाधान) शास्त्रों में वर्णित है किन्तु मूर्ख को समझाने का या उसकी मूर्खता को दूर करने का कोई उपाय नहीं है। अनेक उदाहरणों द्वारा अपनी बात को सिद्ध करते हुए बताते हैं जैसे अग्नि को पानी से बुझाया जा सकता है, छतरी के प्रयोग से सूर्य की गर्मी को कम किया जा सकता है, तीक्ष्ण अंकुश से विशालकाय तथा मदमस्त हाथी को भी वश में किया जा सकता है, बैल तथा गधे को डण्डे से मारकर वश में कर सकते। औषधि के सेवन से रोग से छुटकारा मिल सकता है तथा मंत्र–तन्त्रों के जाप से विष को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार शास्त्रों में हर समस्या का समाधान तथा कष्ट का निवारण वर्णित है किंतु मूर्ख के लिए कोई दवा वर्णित नहीं है अर्थात मूर्ख को समझाना असंभव है, क्योंकि वह किसी की कोई बात सुनने या समझने को तत्पर ही नहीं होता। मूर्खता को एक असाध्य रोग के रूप में वर्णित किया गया है।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ।।

कवि इस श्लोक के माध्यम से मनुष्य मात्र को शिक्षा देते है कि मूर्ख लोगों की संगति से बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए मूर्खों की संगति चाहे कितनी भी सुख सुविधा देने वाली क्यों न हो फिर भी वह त्याज्य है तथा वनवासियों के साथ पर्वत या दुर्गम स्थलों पर कष्टपूर्वक भी चाहे भटकना पड़े वह निस्संदेह अच्छा है क्योंकि हम मूर्खों के दुर्गणों से बचे रहेंगे। इस प्रकार मूर्ख व्यक्ति के संपर्क में कष्टों से पूर्ण वनवासियों का संग भी श्रेयस्कर बताया गया है।

निष्कर्ष : — थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त करके जो व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ मानने लगता है, अपने पर अहंकार करता है उस ढीठ व्यक्ति को समझाने का प्रयास सदैव निष्फल ही होता है क्योंकि वह ढीठ व्यक्ति समझने की बजाय उस बात को काटता रहता है, स्वयं इन्द्र भी ऐसे व्यक्ति को नहीं समझा सकते हैं, अतः ऐसे व्यक्ति को समझाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। भर्तृहरि कहते है कि मनुष्य अनेक असंभव कार्य को संभव कर सकता है किंतु थोडे से ज्ञान वाले मूर्ख व्यक्ति को संतुष्ट करना असंभव है। भर्तृहरि बताते है कि शास्त्रों में सभी परेशानियों का इलाज (समाधान) मौजूद है किंतु मूर्खता को दूर करने का कोई उपाय नहीं मिलता। भर्तृहरि मनुष्य मात्र को शिक्षा देते हैं कि मूर्ख लोगों का साथ कितना ही सुखदायी क्यों न हो उसकी अपेक्षा वनवासियों के साथ कष्टपूर्वक ही दुर्गम स्थानों पर भटकना अच्छा है, इससे हम मूर्खो के दुर्गुणों से बचे रहेंगे अर्थात् मूर्खों के साथ नहीं रहना चाहिए।

17.2.2 विद्वत्पद्धति

भर्तृहरि विद्या को ही मनुष्य का सर्वोतम धन एवं आभूषण मानते हैं। विद्या से युक्त मनुष्य को किसी आभूषण की आवश्यकता नहीं होती है। जबकि विद्याविहीन मनुष्य पशु के समान है अतः विद्या अध्ययन आवश्यक है।

इस श्रृंखला में सर्वप्रथम भर्तृहरि जी विद्या के महत्व प्रतिपादन करते हैं —

विद्या का महत्व —

"हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा
ऽप्यार्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धि पराम्।
कल्यान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्द्धते।

अर्थात विद्यारूपी धन कभी भी चोरों को दृष्टिगत नहीं होता है, विद्यारूपी धन सदैव ही कल्याण परस्परा में वृद्धि करता है। (विद्यार्थियों) याचकों को सदा दिये जाने पर भी कभी घटता नहीं है वरन बढ़ता ही है। ये धन कभी भी नष्ट नहीं होता है। अतः विधारूपी धन जिनके पास है उन विद्वानों का प्रयत्नपूर्वक सदा सम्मान करना चाहिए अतः धन के अहंकार से युक्त राजाओं विद्वानों के प्रति अपने अहंकार को छोड़ दो क्योंकि विद्वानों की तुलना कोई भी नहीं कर सकता है। राजा अपनी शक्ति के कारण केवल स्वदेश में पूजा जाता है जबकि विद्वान की पूजा सर्वत्र होती है —

"स्वदेशे पूज्यते राजा दिन सर्वत्र पूज्यते "

विद्वत्पद्धति पर प्रकाश डालते हुये आगे भर्तृहरि जी सत्ताधारियों एवं राजाओं को सम्बोधित करते हुये कहते हैं — 'हे राजन् परमार्थ करने वाले ज्ञानियों का अनादर मत करो, एंव हे राजन! विद्वानों निर्धन मत समझो क्योंकि उनके पास विद्यारूपी धन है। "विद्वानों के साथ कोई भी ईर्ष्या नहीं कर सकता है। इसी के साथ ही भर्तृहरि विद्या के महत्व को बताते हुये कहते हैं —

येंषा नविद्यान तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।

अर्थात् जिस मनुष्य में विद्या का आभाव है और न तप है, न दान है, न ही उसके व्यक्तित्व में सहनशीलता है एवं समस्त गुणों से हीन है, वह इस संसार में तृणों को न खाता हुआ भी पशु के समान ही पृथ्वी पर विचरण करता है।

17.2.3 – विद्वानों का संरक्षण

कवि भर्तृहरि अपने नीतिशतक ग्रन्थ के माध्यम से समाज के राज्य के अधिपति राजा प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति आदि को यह उपदेश करते है कि विद्वानों का संरक्षण आवश्यक है क्योंकि किसी भी देश का विकास विद्वानों एंव अध्यापको के द्वारा ही सम्भव है। यदी कारण हो कि भर्तृहरि की नीतियाँ आज भी समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी है।

इसी बात को भर्तृहरि अपने इस श्लोक के माध्यम से स्पष्ट करते है –

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान्माऽवमस्थाः
स्तृणामिव लघु लक्ष्मीनैर्व तान् संरूणद्धि।
अभिनव मदरेखाश्यामगण्डस्थलानां
न भवति 'विसतन्तुर्वारणं वारणानां ।।

अर्थात हे राजन् विद्वानों का अनादर मत करो विद्वानों के विद्वता की तुलना कभी भी धन से नहीं की जा सकती है, धन से विद्वानों को न बाँधा जा सकता है और न नहीं खरीदा जा सकता है। ठीक वैसे ही जैसे उन्मत्त हाथियो को एक कमल नाल के तंतु से नहीं बाँधा जा सकता है, ठीक वैसे ही विद्वानों को धन से नहीं बाँधा जा सकता है।

17.2.4 सर्वोतम आभूषण

कवि भर्तृहरि विद्वता एवं विवेक को ही सर्वोत्तम आभूषण बताते हुये कहते हैं–

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला:
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजा: ।
वाण्येका समङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणनि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।।

अर्थात किसी भी मनुष्य को आभूषण कभी भी अलंकृत नहीं कर सकते हैं केवल मनुष्य के अच्छे कार्य एवं उसकी सुसंस्कृत वाणी ही मनुष्य का स्थायी एवं वास्तविक आभूषण होता है। विवेकपूर्ण एवं सुसंस्कृत वाणी के द्वारा ही व्यक्ति की परख होती है।

17.2.5 सर्वोतम धन

कवि भर्तृहरि विद्या को ही सर्वोतम धन एवं विद्वान को सर्वोत्तम धनी कहते हैं–

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः ।
विद्या बंधुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ।।

अर्थात् – किसी भी मनुष्य को विद्या रूपी गुण ही उसके रूप को चमत्कृत करता है। एवं विद्यारूपी धन एक गुप्त धन के सामान है। विद्या गुरुवो का भी गुरु है। विद्या एवं सुसंस्कृत वाणी ही किसी भी व्यक्ति को बड़ा बना सकती है। विद्या ही किसी भी अपरिचित स्थान पर मित्र के समान सहायता करती है। विद्यारूपी धन की कभी भी हानि नहीं हो सकती है अतः विद्या एवं सुसंस्कृत वाणी की महत्ता सर्वाधिक है। विद्या एवं संस्कार युक्त वाणी से विहीन मनुष्य इस पृथ्वी पर पशु समान है।

17.2.6 अर्थ पद्धति

महाकवि भर्तृहरि ने विद्वता एवं विद्वान् को तो पूर्णतः अकाट्य रूप से धनवान, गुणवान, सर्वोत्तम अलंकार सिद्ध कर दिया है जो कि सत्य भी है।

इसके साथ ही भर्तृहरि ने धन का महत्व भी प्रतिपादित करते हुये कहा है –

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः

स पण्डितः स श्रुतवान गुणज्ञःस

स एव वक्ता स च दर्शनीयः

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ।।

अर्थात – जिसके पास वित्त है वह कुलीन, पण्डित, बहुश्रुत एवं गुणवान समझा जाता है, वही अच्छा वक्ता एवं सुन्दर भी गिना जाता है अतः सभी गुण स्वर्ण पर आश्रित होते है।

17.2.7 दुर्जन एवं सुजन पद्धति

महाकवि भर्तृहरि ने सज्जन एवं दुर्जन के लक्षणों को भी अपने ग्रन्थ में स्पष्ट किया है एवं उनके प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए यह भी बताया है।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् ।

मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकर।।

अर्थात् – विभिन्न विद्याओं से अलंकृत विद्वान होने पर भी दुर्जन का संग नहीं करना चाहिए उसे छोड़ देना चाहिए क्योंकि वह अपने दुर्जन स्वभाव के कारण दुष्टता ही करेगा। ठीक वैसे ही जैसे मणि से विभूषित सर्प क्या भयंकर नही होता है।

अर्थात दुष्ट पुरुष कितना ही विद्वानों क्यों न हो उसकी संगत नहीं करनी चाहिए क्योंकि दुष्ट पुरुष समय आने पर नुकसान अवश्य पहुँचाता है।

कवि दुर्जन के लक्षणों को बताते हुये यह भी कहते है–

– जाड्य ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः

अर्थात – दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति गुणों में की दुर्गुण अवलोकन करता है।

17.2.8 सुजन परोपकार पद्धति

कवि दुर्जन के दुर्गुणों के बारे में बताने के बाद सज्जनों के गुणों की चर्चा करते हुए कहते है –

करै श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपाद प्राणयिता

मुखे सत्यावाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतंच श्रवणयो
र्विनाऽप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम ।।

अर्थात – सज्जन व्यक्ति सदैव ही दान करने में तत्पर, एवं श्रेष्ठ एवं विद्वानों के प्रति आदर सम्मान, मुख मे सदैव सत्य भाषण, हाथों (भुजाओ) में पराक्रम हृदय में शुद्धता सदैव कानों से सुंदर शास्त्र वचनों का श्रवण। ये सभी गुण सज्जन पुरुषों के लिए सम्पदा एवं अलंकार है। सज्जन पुरुषों की विद्वता एवं सज्जनता ही श्रेष्ठ आभूषण एवं सम्पत्ति है उन्हें किसी अन्य अलंकार एवं धन की आवश्यकता नहीं होती है।

ये सदैव ही विद्वता रुपी धन एवं सज्जनता रूपी आभूषण से अलंकृत रहते है।

सज्जनों की विशेषता बताते हुये कवि कहते है –

संपत्सु महतां चितं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिला संघातकर्कश ।।

अर्थात – सज्जन मनुष्य की यह विशेषता होती है कि ये धन संपदा आने पर अत्यन्त दयालु एवं विनम्र हो जाते है एवं मन हृदय कोमलता से भर जाता है जबकि विपत्ति आने पर वे धैर्य एवं कठोरता से उसका सामना करते है।

सज्जनता के गुणों वर्णन के पश्चात आगे कवि परोपकारी व्यक्ति के लक्षण एवं गुणों की चर्चा करते है–

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकनै स्वान गुणान् ख्यापयन्तः
स्वार्थान सम्पादयतो विततपृयुतरारम्भत्ना परार्थे ।
क्षान्त्यैवाडडक्षेपरुक्षाक्षर मुखरमुखान दुर्मुखान दुषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीवाः ।।

अर्थात – अतिशय नम्रता पूर्वक ही अपनी सम्मुन्नति करने वाले सज्जन दूसरों के गुणों के आख्यान द्वारा ही अपने गुणों का आख्यान करते हैं, दूसरों के कार्यसद्वि के साथ ही अपना कार्य सिद्ध करते हैं।दुष्टजनों के क्षमादान देने वाले ऐसे सम्मानित सत्पुरुष इस जगत् में सभी के द्वारा पूजनीय होते हैं।

17.2.9 धैर्य–दैव एवं कर्म पद्धति

महाकवि भर्तृहरि अपने 'नीतिशतकम' ग्रन्थ में मनुष्य में धैर्य, भाग्य एवं कर्म की महत्ता भी बताते हैं। कवि धैर्य के विषय पर चर्चा करते हुये कहते है कि विद्वान् पुरुष किसी भी विषम परिस्थिति में धैर्य का त्याग नहीं करता हैं । एक पौराणिक कथा का उदाहरण देते हुए भर्तृहरि कहते है –

कि समुद्र मंथन के समय देवतागण बहुमूल्य रत्नों के प्राप्त हो जाने पर भी संतुष्ट नहीं हुये, भयंकर विष से भयभीत नहीं हुये ,अमृतपान किये बिना मेधन कार्य करते रहे, अर्थात धैर्यशाली व्यक्ति अपना कार्य पूर्ण होने से पहले न हीं किसी भी की सम्पत्ति से संतुष्ट होते हैं और न ही किसी विपत्ति से विचलित होते है। कार्य पूर्ण होने से पहले विराम नहीं लेते हैं। वे प्रारम्भ किये गये कार्य को अवश्य ही पूर्ण करते हैं।

धैर्यशाली पुरुषों के चरित्र (गुणों) पर प्रकाश डालते हुए कवि आगे कहते है –

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
नयाय्यात पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

अर्थात्– नीतिज्ञ (विद्वान) चाहे उनकी निन्दा करें या उनकी प्रशंसा, चाहे सम्पति समीप आये या चली जाये। चाहे तत्क्षण देह का अन्त हो जाए या दूसरे युग तक जीवन काल हो परन्तु सज्जन एवं धैर्यशाली व्यक्ति कभी भी सन्मार्ग से विचलित नहीं होते हैं। धैर्यशाली व्यक्ति को कभी कोई विचलित नहीं कर सकता है।

इसीक्रम में कवि धैर्यशाली व्यक्ति की विशेषता को बताते हुये कहते हैं कि–

कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति गस्य,
चित्त न निर्हती कोपकृशानुतापः ।
कर्षन्ति भूरि विषयाश्च न लोभपाशे
लोकत्रय जयति कृत्सगिर्द स धीरः

अर्थात – जिस धैर्यशाली व्यक्ति के हृदय को रमणीय स्त्रियों के कटाक्षरूपी बाण बेध नहीं पाते हैं, क्रोध जिनके चित्त को तपा नहीं सकता हो, अनेक प्रकार के विषयों के लोभ रूपी पाश से जो खींचे न जाते हो, ऐसे धैर्यशाली व्यक्ति तीनों ही लोकों को जीत लेता है।

अतः प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन की उन्नति हेतु दुर्गुणों का परित्याग कर सद्गुणों का सेवन करना चाहिए।

धैर्य जैसे सद्गुण की चर्चा के बाद कवि दैव पद्धति पर प्रकाश डालते हुये कहते हैं–

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रह किलं हरेरैरावतो वारणः
इत्यैष्वर्य बलान्वितोऽपि बलभिद भग्नः परै संगरे
तदयुक्तं न दैवमेव शरणं धिंग्धिग् वृथा पौरुषम् ।।

अर्थात – इस जीवन में सब कुछ भाग्य के ही (दैव के ही) शरण है, भाग्य से ही (दैव) सब कुछ प्राप्त कर सकते है । सर्वशक्तिशाली इंद्र भी अपने दुर्भाग्य के कारण ही दानव संग्राम में पराजित हुये। जिस इंद्र के गुरु साक्षात् बृहस्पति पथप्रदर्शक है, और कठोर वज्र जिनका अस्त्र है, देवगण जिनकी सेना है। इससे यह सिद्ध होता है कि दैव ही (भाग्य ही) सर्वोपरि है, भाग्य की ही प्रधानता है ,लेकिन वास्तविक रूप में पौरष (पुरुषार्थ) कर्म ही भाग्य का सम्पोषक है अर्थात पुरुषार्थ से ही भाग्य बनता है। अतः समस्त आशा– निराशा को त्यागकर भाग्य की (कर्म की) शरण लेना ही श्रेष्ठ है।

कवि भाग्य पद्धति (दैव पद्धित) की चर्चा के पश्चात् सर्व प्रमुख एवं सर्वसिद्ध कर्म पद्धति की नीतियों की चर्चा करते है –

कवि के अनुसार सम्पूर्ण संसार में कर्म से ऊपर कुछ भी नहीं है, सभी कार्य कर्म के अधीन है।

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वे जनाः स्वजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवतिः सनिधि रत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ।।

अर्थात – वास्तविक रूप में जिस मनुष्य का पूर्वजन्म अर्जित पुण्य कर्मो के आधार पर उनका पुण्य बल प्रबल है, उसके लिए भयंकर जंगल भी नगर हो जाता है। पृथ्वी के सभी प्राणीं उसके कुटुम्बी वे जाते हैं। इतना ही नहीं अपितु समस्त पृथ्वी के लिए रत्नों से परिपूर्ण हो जाती है अर्थात् अभिप्राय यह है कि मनुष्य के द्वारा किये गये पुण्य कर्म ही उसका भाग्य बनकर उसके साथ चलते है। अतः मनुष्यों को सदैव ही पुण्य कर्मो के लिए तत्पर रहना चाहिए।

बोध प्रश्न/अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न–क

प्रश्न 1 दिव्य फल की विशेषता क्या थी ?

प्रश्न 2 भर्तृहरि की दूसरी पत्नी कौन थी ?

प्रश्न 3 – भर्तृहरि के पिता का क्या नाम था ?

प्रश्न 4 – राजा गन्धर्वसेन की कितनी पत्नियाँ थीं ?

प्रश्न 5 – भर्तृहरि के लघु भ्राता का क्या नाम था ?

प्रश्न 6 –मालवा की राजधानी धारानगरी से बदलकर कहाँ की गई थी ?

प्रश्न 7 – भर्तृहरि राज्य पाकर किस प्रवृत्ति के हो गए ?

प्रश्न 8 – भर्तृहरि का अपने भाई विक्रमादित्य के साथ कैसा व्यवहार था ?

बोध प्रश्न–ख

प्रश्न 1 – धन की कितनी दशायें होती हैं ?

(अ) एक (स) दो

(ब) तीन (द) चार

प्रश्न 2 – शतकत्रय में सम्मिलित नहीं है ?

(अ) वैराग्यशतक (ब) श्रृंगारशतक

(स) अमरुकशतक (द) नीतिशतक

प्रश्न 3 – श्रृंगारशतक के रचयिता कौन हैं ?

(अ) जनार्दन भट्ट (ब) भर्तृहरि

(स) गोकुलनाथ (द) सोमेश्वर

प्रश्न 4– गीतिकाव्य की श्रेणी में कौन सा ग्रन्थ है ?

(अ) अमरुकशतक (ब) ऋतुसंहार

(स) गीतगोविन्द (द) उपर्युक्त सभी

प्रश्न 5 – वैराग्यशतक किस श्रेणी में आता है ?

(अ) महाकाव्य (ब) गीतिकाव्य

(स) खण्डकाव्य (द) दृश्यकाव्य

अभ्यास प्रश्न–

प्रश्न 1 – शतकत्रय के रचनाकार श्री भर्तृहरि का संक्षेप में जीवन परिचय दीजिये ?

प्रश्न 2 –नीतिशतक की मौलिक विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन करें ?

17.3 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि साहित्य, संगीत और कला से रहित मनुष्य साक्षात् पशु है। वह भूसा नहीं खाता, यह पशुओं के लिए सौभाग्य की बात है। भर्तृहरि जीवन में विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण और धर्म के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। उन्हें मूर्ख के साथ इन्द्र की सभा में भी रहना उचित नहीं लगता है। राजाओं को उन्होंने शिक्षा दी है कि जिनकी वाणी शास्त्रों से उपस्कृत है तथा शिष्यों को देने योग्य विद्या है, ऐसे विद्वान् जिस राजा के राज्य में निर्धन होते हैं, वह राजा ही अज्ञानी है। विद्या कभी चोर को दिखाई नहीं देती, प्रलय काल में भी नष्ट नहीं होती, वह ज्ञानियों का छिपा हुआ धन है, इसलिये राजाओं को विद्वानों के सामने गर्व नहीं करना चाहिये। उन्हें विद्वानों का अपमान भी नहीं करना चाहिये। विद्वज्जन लक्ष्मी के वश में नहीं होते, लक्ष्मी एक तिनका है तथा तिनके से मतवाले हाथी को नहीं रोका जा सकता। विद्वत्ता ऐसा गुण है कि ब्रह्मा भी उसे विद्वान् से दूर नहीं कर सकता। भर्तृहरि कहते हैं कि मनुष्य बाजूबन्द आदि आभूषणों से सुशोभित नहीं होता, संस्कार युक्त वाणी ही सबसे बड़ा आभूषण है। विद्या ही मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है, वही उन्हें सुख और यश प्रदान करती है। वह गुरुजनों की भी गुरु है। राजागण विद्या को ही सम्मान देते हैं, इसीलिये विद्या से रहित व्यक्ति पशु है।

17.4 शब्दावली

1. आभूषण– गहनें
2. मतवाला हाथी– मदमस्त हाथी
3. शरण– आश्रय
4. सम्पत्ति– धन,खजाना

17.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भर्तृहरिशतकत्रयम्, सम्पादकः – पु. गोपीनाथ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2010
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी, 2001
3. वृत्तरत्नाकरः, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011
4. अमरकोश, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड़, दिल्ली, 2011
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009

17.6 बोध/ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–क

उत्तर –1 आयुवर्द्धक

उत्तर –2 पिङ्गला

उत्तर –3 भर्तृहरि के पिता का नाम गन्धर्वसेन था।

उत्तर –4 राजा गन्धर्वसेन की दो पत्नियाँ थीं ।

उत्तर –5 भर्तृहरि के अनुज भ्राता का नाम विक्रमादित्य था।

उत्तर –6 धारानगरी से बदलकर उज्जैन बनायी गई थी।

उत्तर –7 भर्तृहरि सत्ता पाकर विषय भोगों में लिप्त हो गए।

उत्तर – 8 भर्तृहरि का अपने भाई विक्रमादित्य के साथ अच्छा व्यवहार नही था, उसने उसे राज्य से निकाल दिया था।

बोध प्रश्न–ख

1. (ब) तीन
2. (स) अमरुकशतक
3. (ब) भर्तृहरि
4. (द) उपर्युक्त सभी
5. (ब) गीतिकाव्य

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर छात्र स्वयं लिखे

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY